

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

अति महत्वपूर्ण प्रश्न

आर.सी. स्प्रोल

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

अति महत्वपूर्ण प्रश्नों की पुस्तिकाएँ निश्चित मसीही
सच्चाइयों के विषय में एक सहज परिचय प्रदान करती हैं।
इस बढ़ते हुए संग्रह में निम्न शीर्षक सम्मिलित हैं:

यीशु कौन है?

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

क्या प्रार्थना बातों को बदलती है?

क्या मैं परमेश्वर की इच्छा को जान सकता हूँ?

मुझे इस संसार में कैसे जीना चाहिए?

नया जन्म होने का अर्थ क्या है?

क्या मुझे निश्चय हो सकता है कि मैं उद्धार पाया हुआ हूँ?

विश्वास क्या है?

मैं अपने दोषबोध के साथ क्या कर सकता हूँ?

लिएकता क्या है?

श्रृंखला की शेष पुस्तकों के लिए कृपया जाएँ:

<https://margsatyaajeevan.com>

अप्र

क्या मैं बाइबल
पर भरोसा कर
सकता हूँ?

आर.सी. स्प्रोल



Originally published in English under the title:

Can I Trust the Bible?

© 2017 by R.C. Sproul

Published by Ligonier Ministries

421 Ligonier Court, Sanford, FL 32771

Ligonier.org

Translated by permission. All rights reserved.

First Hindi Translation and Print 2025

This Hindi edition is issued in arrangement with Ligonier Ministries, USA.

Translated and published in India by 'Marg Satya Jeevan'

for distribution and sales worldwide.

'Marg Satya Jeevan' is a brand of Hodalzo Services Pvt. Ltd. company which exists to print, publish & distribute resources for the Church in India.

Hindi ISBN: 978-81-986399-3-6 (eBook)

प्रथम हिन्दी अनुवाद एवं संस्करण 2025

‘क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?’ पुस्तक का हिन्दी संस्करण लिग्निएर मिनिस्ट्रीज़ के प्रायोजन से ‘मार्ग

सत्य जीवन’ द्वारा अनुवादित एवं प्रकाशित किया गया है।

अधिक संसाधनों के लिए *मार्ग सत्य जीवन* की वेबसाइट पर जाएँ:

<https://margsatyajeevan.com>

विषय सूची

एक	विशेष प्रकाशन	1
दो	पवित्रशास्त्र की अभिप्रेरणा और उसका अधिकार	13
तीन	अचूकता और त्रुटिहीनता	25
चार	ग्रन्थसंग्रहण	37
पाँच	अधिकार और अर्थानुवाद	47

अध्याय एक

विशेष प्रकाशन

Special Revelation

1 970 के दशक में, हैरल्ड लिन्डसेल (*Harold Lindsell*) ने *द बैटल फॉर द बाइबल* (बाइबल के लिए युद्ध) नामक पुस्तक को प्रकाशित किया। उस पुस्तक में, लिन्डसेल ने उस समय के एक बड़े विवादस्पद विषय को सम्बोधित किया—अर्थात् पवित्रशास्त्र की सत्यता और विश्वसनीयता। बाइबल की अभिप्रेरणा (*inspiration*), अचूकता (*infallibility*), और त्रुटिहीनता (*inerrancy*) के विरोध में असंख्य तर्कों का सामना करते हुए, लिन्डसेल ने दृढ़ता से यह घोषणा की कि बाइबल अभी भी विश्वसनीय है।

बाइबल की सच्चाई के प्रति निरन्तर प्रश्नों का विरोध करने की इसी इच्छा ने अक्टूबर 1978 में 250 से अधिक सुसमाचारवादी (*evangelical*) अगुवों को शिकागो में एकत्रित किया। इन्टरनैशनल काउन्सिल ऑन बिब्लिकल

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

इन्तेरेन्सी (*International Council on Biblical Inerrancy*) द्वारा आयोजित किए गए उस सम्मेलन का उद्देश्य, पवित्रशास्त्र के विषय में ऐतिहासिक प्रोटेस्टेन्ट दृष्टिकोण की पुष्टि करते हुए, इस पर उठते प्रश्नों पर एक सीमा को निर्धारित करना था। इसी का परिणाम था बाइबलीय लुटिहीनता पर शिकागो कथन (*the Chicago Statement on Biblical Inerrancy*)।

बाइबल की विश्वसनीयता का विषय अत्यावश्यक है। ऐतिहासिक रूप से कलीसिया ने पवित्रशास्त्र के माध्यम से ही विश्वास और जीवन से सम्बन्धित बातों को समझने का दावा किया है, परमेश्वर द्वारा कुछ नहीं में से सब वस्तुओं की सृष्टि से लेकर, यीशु ख्रीष्ट* के जीवन, मृत्यु, पुनरुत्थान तक, और स्वर्गारोहण के महत्व से लेकर, उस अन्तिम चर्मोत्कर्ष तक जिसकी ओर सम्पूर्ण इतिहास बढ़ रहा है। यदि इन विषयों से सम्बन्धित शिक्षा पर बाइबल अविश्वसनीय है, तो फिर कलीसिया केवल अनुमान ही लगा सकती है और फिर उसके पास संसार से कहने के लिए कुछ भी मूल्यवान बातें नहीं हैं।

इस सम्मेलन के पश्चात् के वर्षों में बाइबल के लिए युद्ध शान्त नहीं हुआ है। अब और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गया है कि विश्वासी समझें कि बाइबल क्या है। तथा क्यों वे इस पर सम्पूर्ण हृदय से भरोसा कर सकते हैं। मसीहियों को अभी भी समझाए जाने की आवश्यकता है कि वे बाइबल पर क्यों भरोसा कर सकते हैं और उन्हें भरोसा क्यों करना भी चाहिए।

* यद्यपि परम्परागत रीति से यूनानी शब्द ख्रिस्टोस को हिन्दी अनुवादों में 'मसीह' के रूप में अनुवाद किया गया है, इसके लिए 'ख्रीष्ट' शब्द अधिक उपयुक्त है। इसका कारण यह है कि 'मसीह' शब्द इब्रानी भाषा के *मशियाख* अर्थात् मसीहा शब्द से लिया गया है, जबकि नए नियम की मूल भाषा यूनानी है। अन्य भाषाओं के बाइबल अनुवादों में भी *ख्रिस्टोस* के लिए उसी पर आधारित शब्दों का ही उपयोग किया गया है। इसलिए, इस पुस्तक में 'मसीह' के स्थान पर 'ख्रीष्ट' शब्द का उपयोग किया गया है।

प्रकाशन का स्वभाव

मसीहियत स्वयं में एक प्रकट (प्रकाशित) किया गया धर्म है, और इस प्रकाशन की एक विषय-वस्तु है। इस ईश्वरीय प्रकाशन के स्वभाव का विषय एक ऐसे प्रश्न पर केन्द्रित है जिस पर युगों से विवाद चला आ रहा है, विशेषकर बीसवीं और इक्कीसवीं शताब्दियों में। ईश्वरविज्ञानियों ने कई स्पष्टिकरण दिए हैं कि प्रकाशन क्या है, हमने इसे कैसे प्राप्त किया है, और इसे कैसे समझा जाना चाहिए, और इसकी व्याख्या कैसे की जानी चाहिए। बाइबल के लिए होने वाले इस युद्ध के केन्द्र में यह असहमति है: क्या परमेश्वर स्वयं को इस रीति से प्रकट कर सकता है और प्रकट करता है जिसे लोग समझ सकते हैं? ऐतिहासिक रूप से, कलीसिया ने पुष्टि की है कि परमेश्वर स्वयं को प्रकट करता है, और यह भी कि वह दो विशिष्ट रीतियों से स्वयं को प्रकट करता है: सामान्य प्रकाशन के द्वारा और विशेष प्रकाशन के द्वारा।

सामान्य प्रकाशन अपने नाम से ही स्पष्ट है: यह सामान्य है। यह सब स्थानों में लोगों के लिए उपलब्ध है। बाइबल बताती है कि परमेश्वर स्वयं को प्रकृति और विवेक के द्वारा प्रकट करता है (भजन 19:1; रोमियों 2:15)। यह सामान्य प्रकाशन है। यह संसार में सब लोगों से परमेश्वर के विषय में कुछ न कुछ बताता है: कि परमेश्वर कौन है, कि वह भला है, और वह सामर्थी है (रोमियों 1:19-20)।

दूसरी ओर, विशेष प्रकाशन सब लोगों के लिए उपलब्ध नहीं है। इस अर्थ में, इसमें सामान्य जानकारी नहीं है, परन्तु इसकी विषय-वस्तु अधिक विशिष्ट

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

है। विशेष प्रकाशन छुटकारे के विषय में परमेश्वर की योजना को प्रकट करता है। यह हमें देहधारण, क्रूस, और पुनरुत्थान के विषय में बताता है—ऐसी बातें जो प्राकृतिक जगत के अध्ययन के द्वारा नहीं सीखी जा सकती हैं। यह प्रकाशन प्राथमिक रीति से पवित्रशास्त्र में पाया जाता है (हालाँकि यह यहीं तक सीमित नहीं है)। बाइबल इस बात की साक्षी देती है कि परमेश्वर ने विशेष रीति से स्वयं को कैसे प्रकट किया है:

प्राचीनकाल में, परमेश्वर ने नबियों के द्वारा पूर्वजों से बार बार तथा अनेक प्रकार से बातें करके, इन अन्तिम दिनों में हमसे अपने पुत्र के द्वारा बातें की हैं, जिसे उसने सब वस्तुओं का उत्तराधिकारी ठहराया और जिसके द्वारा उसने सम्पूर्ण सृष्टि की रचना भी की। वह उसकी महिमा का प्रकाश और उसके तत्व का प्रतिरूप है, तथा अपने सामर्थ्य के वचन के द्वारा सब वस्तुओं को सम्भालता है। वह पापों को धोकर ऊँचे पर महामहिमन् की दाहिनी ओर बैठ गया। (इब्रानियों 1:1-3)

हम स्वयं परमेश्वर से विशिष्ट जानकारी प्राप्त करते हैं, और यह अद्भुत तथ्य ज्ञान के विषय में मसीही समझ के आधार में निहित है। दर्शनशास्त्र का एक उपविभाग ज्ञानमीमाँसा (*Epistemology*) है, जो कि ज्ञात करने का विज्ञान है। यह विश्लेषण करता है कि मनुष्य किन रीतियों से ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम हैं। इस विषय पर बड़े वाद-विवाद होते हैं कि क्या मनुष्य प्राथमिक रीति से मस्तिष्क के द्वारा सीखते हैं—ज्ञान के प्रति बुद्धिसम्पन्न (*rational*)

मार्ग से—या इन पाँच ज्ञानेंद्रियों के द्वारा अर्थात् दृष्टि, ध्वनि, स्वाद, स्पर्श और सुगन्ध—आनुभविक (*empirical*) मार्ग से। मसीही समाज में भी यह विवाद बना हुआ है कि क्या तर्कबुद्धि प्राथमिक है या फिर ज्ञानेन्द्रियाँ प्राथमिक हैं।

यद्यपि, मसीही होने के कारण, हम सब को सहमत होना चाहिए कि मसीहियत अन्ततः उस ज्ञान पर आधारित है जो हमारे पास स्वयं परमेश्वर से आता है। सत्य को हमारे द्वारा निर्धारित करने हेतु इस विश्वास को थामे रहना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि जो ज्ञान परमेश्वर से आता है वह उन सब बातों से कहीं अधिक श्रेष्ठ है जिन्हें हम अपनी स्थिति के विश्लेषण से, अन्तरिक अवलोकन से, या हमारे आस-पास के संसार का अध्ययन करने से ज्ञात करते हैं।

परमेश्वर बोलता है

परमेश्वर की ओर से प्राप्त किए गए प्रकाशन को समझने में एक आवश्यक अवधारणा यह है कि यह प्राप्त किया जाता है। प्राप्त किया जाता शब्द ऐतिहासिक रीति से महत्वपूर्ण है। कलीसिया की महासभाओं (*councils*) ने ग्रन्थसंग्रह (*canon*) के सम्बन्ध में लातीनी शब्द *रेसिपीमस* (*recipemus*), अर्थात् “हम प्राप्त करते हैं,” का उपयोग किया; वे कह रहे थे कि पवित्रशास्त्र में सम्मिलित करने के लिए विभिन्न पुस्तकों को “उन्होंने प्राप्त किया”। प्राप्त करते हैं शब्द का उपयोग करने के द्वारा कलीसिया ने स्पष्ट किया कि वह अपने

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

अधिकार से कुछ पुस्तकों को आधिकारिक नहीं ठहरा रही थी; वरन् उन्होंने पवित्रशास्त्र में परमेश्वर की वाणी को पहचाना और उसके वचन के अधीन होने की इच्छा को प्रदर्शित किया। निर्णायक रीति से वे—और हम—बाइबल पर विश्वास करते हैं क्योंकि यह स्वयं परमेश्वर से आती है।

प्रथम शताब्दी में ग्रन्थसंग्रह के बन्द किए जाने के समय से, परमेश्वर का वचन ही केवल वह माध्यम है जिसके द्वारा परमेश्वर कलीसिया से बात करता है। परन्तु पहले, उसने अपने लोगों से विभिन्न रीतियों से बात की थी। पुराने नियम के समयों में, उसने कुछ अवसरों पर लोगों से सीधे बात की। कुछ ऐसे भी अवसर थे जब उसने अपने आप को स्वप्नों द्वारा और विशेष चिह्नों के द्वारा प्रकट किया, जैसे उसने गिदोन के साथ किया था। ऐसे समय थे जब परमेश्वर ने पर्चियों के डाले जाने के द्वारा, याजकों द्वारा ऊरीम और तुम्मीम के प्रयोग के द्वारा, और ईश्वरदर्शनों (*theophanies*) के द्वारा अपने आप को प्रकट किया। अंग्रेज़ी का शब्द *थियोफनी* यूनानी शब्द *थीयोस*, अर्थात् “परमेश्वर,” और *फनेरोस*, अर्थात् “प्रकटीकरण” से आता है, तो थियोफनी साधारण रीति से अदृश्य परमेश्वर का एक दृश्य प्रकटीकरण हुआ करता था।

सम्भवतः पुराने नियम का सबसे चिरपरिचित ईश्वरदर्शन वह जलती हुई झाड़ी है, जिसका सामना मूसा ने मिद्यान के जंगल में किया था। जब मूसा ने एक जलती हुई झाड़ी को देखा जो आग द्वारा भस्म नहीं हो रही थी, तो वह झाड़ी के पास गया, और परमेश्वर ने स्पष्ट रूप से मूसा से झाड़ी में से यह कहते हुए बात की, “मैं जो हूँ, सो हूँ” (निर्गमन 3:14)। झाड़ी अदृश्य परमेश्वर का

विशेष प्रकाशन

एक दृश्य प्रकटीकरण था। वह बादल का खम्भा और आग का खम्भा जिसने निर्गमन के पश्चात् जंगल में भटकते समय इस्राएल का मार्ग-दर्शन किया, वे भी अदृश्य परमेश्वर के दृश्य प्रकटीकरण थे।

नबी और प्रेरित

परमेश्वर ने प्राथमिक रीति से नबियों के माध्यम से इस्राएल के लोगों से बातचीत की, जिनको हम “प्रकाशन के अभिकर्ता” (*agents of revelation*) कहते हैं। नबी ठीक हमारे ही जैसे मनुष्य थे। वे मनुष्यों की भाषा का उपयोग करते थे और क्योंकि वे परमेश्वर से जानकारी प्राप्त करते थे इसलिए उनके शब्द ईश्वरीय प्रकाशन के पात्र या वाहक जैसे कार्य करते थे। इसीलिए वे अपनी नबूवतों का आरम्भ इन शब्दों से करते थे, “यहोवा यों कहता है।” नबियों के शब्दों को लेखों में लिखा गया और वे परमेश्वर के लिखित वचन बन गए। इस प्रकार, पुराना नियम हमारे जैसे लोगों द्वारा लिखा गया, जो इस अर्थ में हम से भिन्न थे कि वे परमेश्वर द्वारा उसके लोगों के लिए प्रवक्ता होने के लिए निर्धारित किए गए।

निस्सन्देह, प्राचीन इस्राएल में प्रत्येक जन जो नबी होने का दावा करता था, वास्तव में, नबी नहीं था; जी हाँ, इस्राएल का सबसे बड़ा संघर्ष विरोधी राष्ट्रों के साथ नहीं किन्तु झूठे नबियों के साथ छावनी में या नगर के फाटकों के भीतर था। झूठे नबी परमेश्वर की ओर से सच्चे प्रकाशन के विपरीत जो लोग सुनना चाहते थे उस बात को लोगों को सिखाने के लिए जाने जाते थे। अपनी

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

पूरी सेवा काल में, यिर्मयाह झूठे नबियों से घिरा हुआ था। जब यिर्मयाह ने परमेश्वर के आने वाले न्याय के विषय में लोगों को चिताने का प्रयास किया, तो झूठे नबियों ने यिर्मयाह की नबूवत का विरोध किया और उसके सन्देश को दबाने के लिए प्रत्येक सम्भव प्रयास किया।

एक झूठे नबी और सच्चे नबी के मध्य में भेद करने के कुछ उपाय थे। इस्राएलियों को यह ज्ञात करने के लिए कि ईश्वरीय प्रकाशन का सच्चा पात्र कौन है तीन परीक्षणों को लागू करना था। प्रथम परीक्षण ईश्वरीय बुलाहट थी, इसी कारण नबीगण यह दिखाने के लिए उत्सुक रहते थे कि वे सीधे परमेश्वर द्वारा बुलाए गए थे और कार्य के लिए नियुक्त किए गए थे। पुराने नियम में हम कई नबियों को देखते हैं जिसमें आमोस, यशायाह, यिर्मयाह और यहजकेल सम्मिलित हैं, जो अपने श्रोताओं के लिए उन परिस्थितियों का वर्णन करते हैं जिनके द्वारा वे नबूवत के लिए विशेष रीति से बुलाए गए और अभिषिक्त किए गए थे।

पुराने नियम में एक सच्चे नबी का द्वितीय परीक्षण आश्चर्यकर्मों की उपस्थिति थी। पुराने नियम के सभी नबियों ने आश्चर्यकर्म नहीं किए, परन्तु मूसा के दिनों में अनेक आश्चर्यकर्मों के आरम्भ होने के साथ उनकी सेवा की पुष्टि हुई और यह एलियाह के दिनों तक बनी रही, और अन्य नबी उसी क्रम में आते रहे। सच्चे आश्चर्यक्रम और झूठे आश्चर्यकर्म में भेद करना अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय था क्योंकि कृत्रिम आश्चर्यकर्म भी होते थे, जैसे कि

वे जो फिरौन की राजसभा में जादूगरों द्वारा किए गए थे। उनके तथा-कथित आश्चर्यकर्म केवल धोखा देने वाली चालें थीं।

एक सच्चे नबी का तृतीय परीक्षण परिपूर्णता (*fulfilment*) था; दूसरे शब्दों में, क्या नबी द्वारा घोषित बातें घटित हुईं? झूठे नबियों ने बतलाने का प्रयास किया कि क्या होने वाला है, परन्तु जब उनकी नबूवतें पूरी नहीं हुईं, तो उनके सन्देश झूठे प्रमाणित हुए।

नए नियम में, नबी के समकक्ष (*counterpart*) प्रेरित थे। एक प्रेरित का मुख्य चिन्ह था कि उसे ख्रीष्ट के द्वारा सीधे बुलाहट प्राप्त हुई थी। प्रेरित शब्द एक ऐसे व्यक्ति को सन्दर्भित करता है जो किसी भेजने वाले व्यक्ति के अधिकार के द्वारा भेजा गया है या नियुक्त किया गया है। यीशु ने अपने प्रेरितों से कहा, “जो तुम्हें ग्रहण करता है वह मुझे ग्रहण करता है, और जो मुझे ग्रहण करता है, वह मेरे भेजने वाले को ग्रहण करता है” (मत्ती 10:40)। नए नियम का एक अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रेरित, पौलुस, आरम्भिक बारह में से एक नहीं था। सम्भवतः पौलुस यीशु को पृथ्वी पर उसकी सेवा के समय नहीं जानता था, और वह पुनरुत्थान का प्रत्यक्षदर्शी नहीं था जैसा कि शेष प्रेरित थे। ऐसा प्रतीत होता है कि पौलुस के पास प्रेरित होने के लिए आवश्यक प्रत्यायक (*credentials*) नहीं थे, और इसी कारण नया नियम दोनों पौलुस की स्वयं की साक्षी के द्वारा और लूका की साक्षी के द्वारा, दमिश्क के मार्ग पर पौलुस की बुलाहट की परिस्थितियों का वर्णन करता है। इसके अतिरिक्त, अन्य प्रेरितों ने पौलुस की प्रेरिताई की प्रमाणिकता की पुष्टि की।

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

नबी और प्रेरित साथ में कलीसिया की नींव बनते हैं (इफिसियों 2:20)। दोनों पुराने नियम के नबियों और नए नियम के प्रेरितों के द्वारा, हमें विशेष प्रकाशन का लिखित अभिलेख प्रदान किया गया है। यह हमारे पास ख्रीष्ट के अभिकर्ताओं से, इस प्रकाशन हेतु उसके द्वारा अधिकृत अभिकर्ताओं द्वारा आया है। यीशु ने अपने हस्ताक्षर वाली कोई भी पाण्डुलिपि (*manuscript*) नहीं छोड़ी है; वह किसी पुस्तक का लेखक नहीं था। उसके विषय में सब कुछ जो हम जानते हैं वह नए नियम के अभिलेखों में पाया जाता है जो हमारे पास उसके प्रेरितों के कार्य के द्वारा पहुँचा है। वे उसके दूत (*emissaries*) हैं, जिनको उसके स्थान पर बोलने के लिए उसका अधिकार दिया गया था।

देहधारी वचन

इब्रानियों का लेखक विशेष प्रकाशन के अन्य आयाम को इंगित करता है, सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन, जो कि देहधारी वचन है। हमारे पास लिखित वचन है, जो हमें विशेष प्रकाशन देता है, परन्तु हमारे पास परमेश्वर का देहधारी वचन भी है, वह जिसके विषय में लिखित वचन बात करता है। जो परमेश्वर के वचन को धारण (*embodies*) करता है वह स्वयं यीशु है, जैसा कि इब्रानियों का लेखक यह कहते हुए घोषणा करता है, “प्राचीनकाल में परमेश्वर ने नबियों के द्वारा पूर्वजों से बार-बार तथा अनेक प्रकार से बातें करके, इन अन्तिम दिनों में हम से अपने पुत्र के द्वारा बातें की हैं, जिसे उसने सब वस्तुओं का उत्तराधिकारी

ठहराया और जिसके द्वारा उसने सम्पूर्ण सृष्टि की रचना भी की” (इब्रानियों 1:1-2)।

जब चले यीशु के साथ ऊपरी कक्ष में एकत्रित थे, तो फिलिप्पुस ने उससे कहा, “हे प्रभु, हमको पिता दिखा दे और यही हमारे लिए पर्याप्त है।” यीशु ने प्रतिउत्तर दिया, “फिलिप्पुस, मैं इतने समय से तुम्हारे साथ हूँ, तौभी तू मुझे नहीं जानता?... क्या तू विश्वास नहीं करता कि मैं पिता मैं हूँ, और पिता मुझ में है?” (यूहन्ना 14:8-10)। सब प्रेरितों का मुखिया, उसको जिसे परमेश्वर ने अपने स्वःप्रकटीकरण (*self-disclosure*) के सर्वश्रेष्ठ पात्र के रूप में चुना है, वह तो स्वयं ख्रीष्ट है। ख्रीष्ट में हम पिता के प्रकाशन की परिपूर्णता से भेंट करते हैं, और हम केवल पवित्रशास्त्र के द्वारा ही ख्रीष्ट से भेंट करते हैं।

अध्याय दो

पवित्रशास्त्र की अभिप्रेरणा और उसका अधिकार

*The Inspiration and Authority of
Scripture*

सो लहवीं शताब्दी के धर्मसुधार (Reformation) का मुख्य कारण केवल विश्वास (faith alone) के द्वारा धर्मीकरण (justification) का सिद्धान्त था, परन्तु उसकी सतह से थोड़ा ही नीचे एक अन्य महत्वपूर्ण विषय था—अधिकार।

जब मार्टिन लूथर ने धर्मीकरण के सिद्धान्त के विषय में रोमन कैथोलिक कलीसिया के अगुवों के साथ वाद-विवाद किया, तो उनको चतुराई से एक

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

ऐसी स्थिति में डाला गया जहाँ उनको सार्वजनिक रीति से अङ्गीकार करना पड़ा कि उनके विचार कलीसिया द्वारा पहले कहे गए कथनों से और भूतपूर्व पोपगणों के कुछ कथनों से सहमत नहीं थे। इस बात ने लूथर के लिए संकट को उत्पन्न किया; कलीसिया या पोप के अधिकार पर प्रश्न उठाना लूथर के दिनों में अस्वीकरणीय था। तौभी लूथर अपनी बात पर स्थिर रहे, और अन्ततः 1521 में वर्म्स की धर्म-सभा (*डाइट ऑफ वर्म्स-Diet of Worms*) में उन्होंने कहा:

जब तक मैं पवित्रशास्त्र की साक्षी या स्पष्ट तर्कबुद्धि के द्वारा दृढ़ निश्चयी नहीं हो जाऊँ (क्योंकि मैं केवल पोप पर या केवल महासभाओं पर भरोसा नहीं करता हूँ, क्योंकि सब जानते हैं कि उन्होंने अनेक लुटियाँ की हैं और स्वयं की बातों का खण्डन किया है), मैं पवित्रशास्त्र द्वारा बाध्य हूँ जिसे मैंने उद्धृत किया है और मेरा विवेक परमेश्वर के वचन का बन्दी है। मैं अपनी किसी भी बात को नहीं नकार सकता हूँ और नकारूँगा भी नहीं, क्योंकि विवेक के विरुद्ध जाना न तो सुरक्षित है और न ही उचित है। मैं इसके सिवाय कुछ और नहीं कर सकता, मैं इस बात पर स्थिर हूँ, परमेश्वर मेरी सहायता करे, आमीन।

उस संघर्ष से धर्मसुधार का नारा सोला स्क्रिपचुरा (*sola Scriptura*) आया, जिसका अर्थ है “केवल-पवित्रशास्त्र।” लूथर और अन्य धर्मसुधारकों (*Reformers*) ने कहा कि केवल एक ही अधिकारी के पास अन्ततः हमारे

पवित्रशास्त्र की अभिप्रेरणा और उसका अधिकार

विवेक को बाँधने का सम्पूर्ण अधिकार है। लूथर ने न तो कलीसिया के लघुतर अधिकार को नीचा दिखाया और न ही नीकिया और चाल्सीदोन जैसे ऐतिहासिक महासभाओं के महत्व को घटाया। जो मुख्य बात वह कह रहे थे वह यह थी कि यहाँ तक कि कलीसिया की महासभाओं के पास भी बाइबल के अधिकार के तुल्य अधिकार नहीं है। इस बात ने बाइबल के अधिकार के स्वभाव और आधार पर ध्यान आकर्षित किया।

लेखकत्व और अधिकार

पवित्रशास्त्र की प्रमुखता (*primacy*) और अधिकार (*authority*) के विषय में धर्मसुधारकों के दृष्टिकोण में बाइबल का लेखकत्व (*authorship*) आधारभूत था। ध्यान दीजिए कि अंग्रेज़ी में ये दो शब्द कितने निकट हैं, *ऑथोरिटी* (अधिकार) और *ऑथरशिप* (लेखकत्व)। अंग्रेज़ी में दोनों शब्दों में *ऑथर* (लेखक) शब्द पाया जाता है। धर्मसुधारकों ने कहा कि यद्यपि बाइबल एक-एक पुस्तक करके प्रकट हुई और मानवीय लेखकों द्वारा लिखी गई थी, किन्तु बाइबल का अन्तिम निर्णायक लेखक पौलुस, लूका, यिर्मयाह, या मूसा नहीं थे, वरन् स्वयं परमेश्वर था। परमेश्वर ने अपने अधिकार को मानवीय लेखकों के लेखों के द्वारा उपयोग किया, जिन्होंने संसार के लिए उसके प्रवक्ता के रूप में सेवा की।

मानव लेखकों के पास परमेश्वर के अधिकार का सौंपा जाना कैसे सम्भव हुआ? जैसे कि हमने पिछले अध्याय में देखा था कि नबियों ने दावा किया था कि उनके सन्देश परमेश्वर से आए थे, और इसीलिए ऐतिहासिक रीति

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

से पवित्रशास्त्र के स्वभाव को दर्शाने के लिए दो लातीनी वाक्यांश उपयोग किए गए हैं। एक वाक्यांश है *वरबम डेय* (*verbum Dei*) जिसका अर्थ है “परमेश्वर का वचन”, और दूसरा है *वॉक्स डेय* (*vox Dei*) जिसका अर्थ है “परमेश्वर की वाणी।” धर्मसुधारक विश्वास करते थे कि यद्यपि परमेश्वर ने व्यक्तिगत रीति से उन शब्दों को नहीं लिखा जो बाइबल के पृष्ठों में प्रकट होते हैं, तौभी वे उसके वचन वैसे ही हैं, मानो जैसे कि वे हमें सीधे स्वर्ग से दिए गए हैं।

तीमुथियुस को लिखे गए अपने दूसरे पत्र में, पौलुस लिखता है, “सम्पूर्ण पवित्रशास्त्र परमेश्वर की प्रेरणा से रचा गया है” (2 तीमुथियुस 3:16)। जिस यूनानी शब्द का यहाँ “पवित्रशास्त्र” के रूप में अनुवाद किया गया है, वह शब्द *ग्राफे* (*graphē*) है जिसका सरल अर्थ है “लेख।” परन्तु यहूदी लोगों के लिए, *ग्राफे* शब्द का विशेष सन्दर्भ पुराने नियम के लिए था। इसके साथ ही “यह लिखा है” वाक्यांश एक तकनीकी शब्द था जिसका उपयोग वे बाइबलीय लेखों (*writings*) की ओर विशेष सन्दर्भ करते हुए समझते थे। 2 तीमुथियुस का यह स्थल बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ पवित्रशास्त्र शब्द का विशेष सन्दर्भ पुराने नियम के लिए है, और उसी तर्क के विस्तार के द्वारा नए नियम में प्रेरितों के लेखों को भी सम्मिलित करता है, क्योंकि प्रेरितों को अपने अधिकार की चेतना थी कि वे पवित्र आत्मा द्वारा उन पर प्रकट किए गए नए नियम के परमेश्वर के वचन को सौंप रहे थे। (उदाहरण के लिए, प्रेरित पतरस, पौलुस के लेखों को शेष पवित्रशास्त्र के लेखों के साथ सम्मिलित करता है; 2 पतरस 3:16 देखें। पौलुस आदेशात्मक प्रकाशन देने के लिए अपने

पवित्रशास्त्र की अभिप्रेरणा और उसका अधिकार

अधिकार के प्रति सचेत है; 1 कुरिन्थियों 7:10-16 देखें।) पौलुस तब एक आश्चर्यजनक दावा करता है जब वह कहता है कि ये सब लेख, सभी ग्राफे परमेश्वर की प्रेरणा द्वारा दिए गए हैं।

श्वास से निकला

इंगलिश स्टैंडर्ड वर्ज़न (*English Standard Version*) बाइबल में जिस शब्द का अनुवाद “श्वास से निकला” (*breathed out*) किया गया है उसी का अनुवाद किंग जेम्स वर्ज़न (*King James Version*) बाइबल में तथा दूसरे अनुवादों में “प्रेरणा के द्वारा दिया गया” (*given by inspiration*) किया गया है। अभिप्रेरणा के सिद्धान्त के लम्बे इतिहास के कारण, हमें 2 तीमोथियुस 3:16 के अर्थ में और जिस प्रकार से कलीसिया के इतिहास में *अभिप्रेरणा* शब्द को समझा गया है उसमें भेद करना चाहिए।

ईश्वरविज्ञानी बी.बी. वॉरफील्ड (*B.B. Warfield*) ने एक बार इंगित किया कि 2 तीमोथियुस 3:16 का वास्तविक अर्थ इस बात से अधिक सम्बन्धित नहीं है कि परमेश्वर ने अपने सन्देश को (मानवीय लेखकों के द्वारा) कैसे संचारित किया किन्तु उस सन्देश के स्रोत से है। अक्षरशः, पौलुस यहाँ लिखता है कि सम्पूर्ण पवित्रशास्त्र *थियोपन्यूस्टोस* (*theopneustos*) है, अर्थात्, “परमेश्वर की श्वास से निकला,” जिसका सम्बन्ध उस बात से है कि परमेश्वर बाहर श्वास में क्या निकालता है इसके विपरीत कि परमेश्वर किस में श्वास डालता है। पौलुस के शब्दों के पीछे का प्रवाह यह है कि सम्पूर्ण पवित्रशास्त्र परमेश्वर से बाहर श्वास में निकला है। श्वास बाहर निकालने को

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

अंग्रेजी में एक्सपिरेशन (*expiration*) कहा जाता है, जबकि श्वास भीतर खींचने को इन्सपिरेशन (*inspiration*) कहा जाता है, इसलिए तकनीकी रीति से हमें इस वाक्यांश का अनुवाद इस प्रकार करना चाहिए कि सम्पूर्ण पवित्रशास्त्र “श्वास भीतर खींचने” (इन्सपिरेशन) के स्थान पर “परमेश्वर के श्वास बाहर निकालने” (एक्सपिरेशन) के द्वारा दिया गया है। तो मुख्य बात यह है कि जब पौलुस बल देता है कि सम्पूर्ण पवित्रशास्त्र परमेश्वर के श्वास से निकला है, तो वह यह कह रहा है कि इसका मूल उद्गम परमेश्वर है। परमेश्वर इन लेखों का स्रोत है।

जब हम एक अवधारणा (*concept*) के रूप में अभिप्रेरणा की बात करते हैं, तो हम पवित्र आत्मा के कार्य की बात कर रहे हैं, जो विभिन्न समयों में लोगों पर आया और अपने सामर्थ्य से उनका अभिषेक किया, जिससे कि वे परमेश्वर के सच्चे वचन को लिखने के लिए अभिप्रेरित हुए। पवित्रशास्त्र में कहीं भी इस सम्बन्ध में पवित्र आत्मा का कार्य परिभाषित नहीं किया गया है, परन्तु बाइबल स्पष्ट है कि पवित्रशास्त्र मानवीय पहल से नहीं रचा गया है। सारांश में, अभिप्रेरणा का सिद्धान्त (*the doctrine of inspiration*) उस बात से सम्बन्धित है जिसमें परमेश्वर ने पवित्रशास्त्र के रचे जाने का पर्यवेक्षण (*superintended*) किया।

कुछ लोगों ने शास्त्रसम्मत (*orthodox*) मसीहियों पर यह आरोप लगाया है कि वे अभिप्रेरणा के विषय में यन्त्रवत् (*mechanical*) विचार की शिक्षा देते हैं, जिसको कभी-कभी “श्रुतिलेख सिद्धान्त” (*dictation theory*) कहा जाता है, जिसमें विचार यह है कि पवित्रशास्त्र के लेखकों ने केवल परमेश्वर द्वारा श्रुतिलेख प्राप्त किया, जैसे एक सचिव किसी पत्र में

पवित्रशास्त्र की अभिप्रेरणा और उसका अधिकार

प्रत्येक बोले गए शब्द को सुनकर लिखता है। ऐतिहासिक रूप से कलीसिया ने अभिप्रेरणा के विषय में इस सरलीकृत (*simplicistic*) विचार से अपने आप को परे रखा है, यद्यपि ऐसे समय भी हुए हैं जब कलीसिया में कुछ लोगों ने ऐसा दर्शाया कि मानो यह विचार सत्य था; उदाहरण के लिए, सोलहवीं शताब्दी में ट्रेन्ट की महासभा में रोमन कैथोलिक कलीसिया ने प्राचीन लेखों के दिए जाने में आत्मा के कार्य के सम्बन्ध में *डिक्टान्टे* (*dictante*) शब्द का उपयोग किया, जिसका अर्थ है “श्रुतिलेखित करना।” जॉन कैल्विन ने कहा कि, कुछ अर्थों में, नबियों और प्रेरितों ने परमेश्वर के *अमैन्यूएन्सिस* (सचिव) के रूप में कार्य किया। जहाँ तक वे परमेश्वर के शब्दों को संचार करने के लिए अभिकर्ता थे, वे *अमैन्यूएन्सिस* थे, परन्तु यह अभिप्रेरणा की विधि को नहीं समझाता है।

अभिप्रेरणा की प्रक्रिया जो भी थी, उसने लिखते समय लेखकों के व्यक्तित्व को नहीं दबाया (*override*)। परमेश्वर ने पवित्रशास्त्र के लेखकों को उनके पवित्र कार्य के लिए चुना और तैयार किया, और पवित्रशास्त्र का विश्लेषण स्पष्ट कर देता है कि उनके विशिष्ट व्यक्तित्व और लिखने की विधि प्रकट होती हैं। उदाहरण के लिए लूका की लिखने की विधि स्पष्ट रूप से मत्ती से भिन्न है। दानियेल की पुस्तक में पाया जाने वाला साहित्यिक ढाँचा याकूब से भिन्न है। इब्रानी मूल के पुरुष इब्रानी रीति से लिखा करते थे और यूनानी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के पुरुष यूनानी रीति से लिखा करते थे। परन्तु परमेश्वर ने इन विभिन्न लेखकों की पृष्ठभूमि, व्यक्तित्व, और साहित्यिक शैली विशेषताओं का उपयोग करते हुए यह सम्भव किया कि उसका सत्य एक अभिप्रेरित रीति

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

से संचारित हो सके। अभिप्रेरणा से मानवीय व्यक्तित्व, लिखने की विधि या साहित्यिक पद्धति को नहीं दबाया, वरन् विकृति, झूठ, और लुटि करने के मानवीय झुकाव को दबाया।

सुसमाचारवादी मसीही इस विचार से दूर रहते हैं कि बाइबलीय लेखक परमेश्वर के हाथ में लेखनी के समान निष्क्रिय उपकरण थे, परन्तु फिर भी वे पुष्टि करते हैं कि अभिप्रेरणा की प्रक्रिया का परिणाम मानो वैसा ही था। उदाहरण के लिए, कैल्विन कहते हैं कि हमें बाइबल को इस रीति से पढ़ना चाहिए *मानो* हमने अपने कानों से परमेश्वर को उसके सन्देश को सुनाते हुए सुना। अर्थात्, उसमें उतना ही अधिकार है मानो स्वयं परमेश्वर उन शब्दों को उच्चारित कर रहा हो।* इसका यह अर्थ नहीं है कि कैल्विन विश्वास करते थे या सिखाते थे कि परमेश्वर ने सुनने योग्य रीति से शब्दों को उच्चारित किया। हम उस प्रक्रिया को नहीं जानते हैं जिसके द्वारा अभिप्रेरित पवित्रशास्त्र दिया गया था। परन्तु अभिप्रेरणा के कारण, भले ही परमेश्वर ने उसे जैसे भी कराया हो, पवित्रशास्त्र के प्रत्येक शब्द में परमेश्वर के अधिकार का भार पाया जाता है।

प्रत्येक अन्तिम शब्द

इसके अतिरिक्त, कलीसिया ने ऐतिहासिक रूप से विश्वास किया है कि बाइबल की अभिप्रेरणा शाब्दिक (*verbal*) थी; दूसरे शब्दों में, अभिप्रेरणा केवल मानव लेखकों द्वारा संचार की गई जानकारी की व्यापक रूपरेखा तक

* इन्स्टिट्यूट्स ऑफ द क्रिश्चियन रिलिजियन 1.7.1.

पवित्रशास्त्र की अभिप्रेरणा और उसका अधिकार

ही सीमित नहीं है, परन्तु अभिप्रेरणा तो पवित्रशास्त्र के प्रत्येक शब्द में है। यह उन कारणों में से एक है कि बाइबल की मूल पाण्डुलिपियों को सावधानीपूर्वक पुनर्निर्माण करने के लिए तथा प्राचीन इब्रानी और यूनानी शब्दों के अर्थों का ध्यान से अध्ययन करने के लिए कलीसिया उत्सुक रही है। प्रत्येक शब्द ईश्वरीय अधिकार को वहन किये हुए है।

जब यीशु ने जंगल में अपनी परीक्षा के समय शैतान से बात की, तो उन्होंने पवित्रशास्त्र में उद्धरणों पर वाद-विवाद किया। यीशु नियमित रीति से शैतान या फरीसियों के विरुद्ध अपना पक्ष एक-एक शब्द के अर्थ के आधार पर रखता था। उसने यह भी कहा कि व्यवस्था में से एक माला या बिन्दु भी नहीं टलेगा, जब तक कि सब कुछ पूरा न हो जाए (मत्ती 5:18)। उसके कहने का अर्थ था कि परमेश्वर की व्यवस्था में एक भी अतिरिक्त शब्द नहीं है या कोई भी शब्द ऐसा शब्द नहीं है जिस पर मोल-तोल किया जा सकता है। प्रत्येक शब्द में मूल लेखक के आदेशात्मक अधिकार का महत्व पाया जाता है।

हमारे समय में, बाइबल के विरुद्ध भारी आलोचना के साथ, अभिप्रेरणा की अवधारणा की अधीनता से बाहर निकलने के प्रयास हुए हैं। जर्मन विद्वान रुडॉल्फ बुल्टमान (*Rudolf Bultmann*) (1884-1976) ने पवित्रशास्त्र के ईश्वरीय उद्गम के विचार को सम्पूर्णता से नकारा था। यद्यपि नवशास्त्रसम्मत (*neoorthodox*) ईश्वरविज्ञानी कलीसिया में बाइबल का प्रचार पुनः स्थापित करने और कलीसिया में बाइबल को एक ऊँचा स्थान दिए जाने के

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

लिए इच्छुक हैं जो कि उन्नीसवीं शताब्दी के उदारवाद (*liberalism*) से कम हुआ था, परन्तु वे भी शाब्दिक अभिप्रेरणा (*verbal inspiration*) और प्रकथनीय (*propositional*) प्रकाशन को नकारते हैं। उनकी पद्धति ने बाइबल को लेकर एक “परिवर्तनात्मक” (*dynamic*) दृष्टिकोण को बढ़ावा देना चाहा जो पवित्रशास्त्र के अधिकार को वचन और वचन के सुने जाने के मध्य परिवर्तनात्मक सम्बन्ध में देखता है। कई ईश्वरविज्ञानियों ने इस बात को नकार दिया है कि बाइबल स्वयं में वस्तुनिष्ठ (*objective*) प्रकाशन है। उनके अनुसार प्रकाशन तब तक नहीं होता है जब तक उस वचन के प्रति भीतरी, व्यक्तिनिष्ठ (*subjective*) मानवीय प्रतिक्रिया नहीं होती है। उदाहरण के लिए एमिल ब्रूनर (*Emil Brunner*) (1889-1966) जैसे विद्वानों ने कहा कि बाइबल स्वयं प्रकाशन नहीं, परन्तु ख्रीष्ट में पाए जाने वाले प्रकाशन की एक साक्षी मात्र है। कार्ल बारथ (*Karl Barth*) (1886-1968) ने कहा कि परमेश्वर अपने आप को घटनाओं के माध्यम से प्रकट करता है, प्रकथनों (*propositions*) में नहीं। कुछ समूहों में यह कहना प्रचलित हो गया है कि विशेष प्रकाशन मूर्तरूप में केवल ख्रीष्ट में पाया जाता है, और कि यदि हम बाइबल को वस्तुनिष्ठ प्रकाशन समझें तो हम देहधारी वचन, अर्थात् ख्रीष्ट, के व्यक्ति की अद्वितीयता को घटा देंगे।

परन्तु, बाइबल केवल घटनाओं के वृत्तान्त का लेखा-जोखा ही नहीं है जिनमें हमको बताया गया है कि क्या घटित हुआ और फिर उसके अर्थ का अर्थानुवाद (*interpret*) करने के लिए हमें अपने हाल पर छोड़ दिया गया है। इसके स्थान पर, बाइबल हमें घटनाओं का विवरण भी देती है,

और फिर उन घटनाओं के अर्थ का आधिकारिक, प्रेरित, और नबूवतीय अर्थानुवाद भी देती है। उदाहरण के लिए, क्रूस पर यीशु की मृत्यु को हमारे लिए अभिलिखित भी किया गया है और सुसमाचारों और पत्रियों में समझाया भी गया है। लोगों ने यीशु की मृत्यु को विभिन्न रीतियों से देखा। उसके बहुत से अनुयायियों में, इससे त्रासदीपूर्ण आशाभंग (*disillusionment*) उत्पन्न हुई; किन्तु पुन्तियुस पिलातुस और काइफा के लिए तो यह एक राजनीतिक लाभ की बात थी। प्रेरित पौलुस, जब क्रूस के अर्थ को समझाता है, तो वह इसको वैश्विक छुटकारे के कार्य के रूप में, और परमेश्वर के न्याय को सन्तुष्ट करने के लिए एक प्रायश्चित्त के रूप में प्रस्तुत करता है, एक ऐसा सत्य जो केवल घटना को ऐसे ही देखने से तुरन्त स्पष्ट नहीं है।

नवशास्त्रसम्मत ईश्वरविज्ञानी यह भी कहते हैं कि बाइबल प्रकाशन नहीं है किन्तु प्रकाशन का एक ज़्यूगनिस (*Zeugnis*) या “साक्षी” है, जो बाइबल के अधिकार के स्तर को अत्यन्त घटा देता है। वे दावा करते हैं कि पवित्रशास्त्र का कुछ ऐतिहासिक महत्व तो है और वह सत्य की साक्षी भी देता है, किन्तु यह स्वयं प्रकाशन नहीं है। इसके विपरीत, शास्त्रसम्मत मसीहियत दावा करती है कि पवित्रशास्त्र न केवल सत्य की साक्षी देता है, किन्तु यह स्वयं सत्य है। वह ईश्वरीय प्रकाशन का वास्तविक मूर्तरूप है। यह केवल स्वयं से परे ही इंगित नहीं करता है; यह हमें परमेश्वर के सत्य वचन से कम कुछ भी नहीं प्रदान करता है।

अध्याय तीन

अचूकता और त्रुटिहीनता

Infallibility and Inerrancy

पवित्रशास्त्र के स्वभाव के विषय में कोई भी चर्चा जिसमें अभिप्रेरणा का विषय सम्मिलित है उसको अचूकता (*infallibility*) और त्रुटिहीनता (*inerrancy*) के विषयों का सामना करना पड़ता ही है। सम्पूर्ण कलीसियाई इतिहास में परम्परागत विचार यह रहा है कि बाइबल अचूक (*infallible*) और त्रुटिहीन (*inerrant*) है। परन्तु मुख्यतः उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों में तथा-कथित उच्चतर आलोचना (*higher criticism*) के उदय के साथ, न केवल पवित्रशास्त्र की अभिप्रेरणा को व्यापक आक्रमण का सामना करना पड़ा, किन्तु विशेषकर अचूकता और त्रुटिहीनता की अवधारणाओं की भी कठोरता से आलोचना की गई है।

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

कुछ आलोचक कहते हैं कि लुटिहीनता का सिद्धान्त सत्रहवीं शताब्दी में प्रोटेस्टेन्ट लोगों की रचना थी, जिसको कभी-कभी “प्रोटेस्टेन्ट विद्यानुरागवाद (scholasticism) का युग” कहा जाता है जो कि धर्मनिरपेक्ष दर्शनशास्त्र के युग के समकालीन था जिसे “तर्कबुद्धि का युग” (the age of reason) कहा जाता है। ये आलोचक दावा करते हैं कि लुटिहीनता एक तर्कसंगत रचना थी जो बाइबल के लेखकों के लिए और सोलहवीं शताब्दी के कलीसियाई धर्मसुधारकों के लिए भी पराई बात थी। परन्तु, धर्मसुधारकों ने यह उद्घोषणा अवश्य की थी कि पवित्रशास्त्र में कोई लुटि नहीं है, और यही आरम्भिक कलीसियाई महापिताओं ने भी कहा था जिसमें टर्टूलियन (Tertullian), आइरेनियस (Irenaeus) और विशेष कर ऑगस्टीन (Augustine) सम्मिलित हैं। इससे भी महत्वपूर्ण बात है ईश्वरीय उद्गम के लिए स्वयं बाइबल का दावा। कलीसिया के लिए यह महत्वपूर्ण है कि बाइबल का दावा है कि वह ईश्वरीय अभिप्रेरणा से लिखी गई है।

शब्दों को परिभाषित करना

कलीसिया ने ऐतिहासिक रीति से देखा है कि इतिहास के सभी लिखित साहित्य में, केवल बाइबल ही विशिष्ट रूप से अचूक है। अचूक शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है “वह जो विफल नहीं हो सकता”; इसका अर्थ है कोई वस्तु जिसमें भूल करने की क्षमता नहीं है। एक भाषा-सम्बन्धी दृष्टिकोण से, अचूक शब्द लुटिहीन शब्द से उच्च है। यद्यपि इन शब्दों को

अचूकता और त्रुटिहीनता

प्रायः एक दूसरे के पर्यायवाची के रूप में उपयोग किया जाता है, दोनों के मध्य ऐतिहासिक तकनीकी भिन्नता बनी हुई है। यह भिन्नता वैसी है जैसी सम्भावना और वास्तविकता के मध्य है, अर्थात् परिकल्पना और वास्तविक के मध्य। अचूकता सम्बन्धित है क्षमता या सम्भावना के विचार से; किसी अचूक बात के लिए कहा जाता है कि उसमें त्रुटि करने की क्षमता नहीं है। इसके विपरीत, वह जो त्रुटिहीन है, यह वह है जो वास्तव में कोई त्रुटि नहीं करता है। उदाहरण के लिए, कोई विद्यार्थी बीस प्रश्नों की परीक्षा में, बीस सही उत्तर लिख सकता है जिससे उसकी परीक्षा त्रुटिहीन पाई जाएगी। परन्तु इस सीमित क्षेत्र में विद्यार्थी की त्रुटिहीनता उसे अचूक नहीं बनाती है, जिसकी पुष्टि अन्य परीक्षाओं में हुई त्रुटियाँ करेंगी।

अभिप्रेरणा के विषय से सम्बन्धित अधिकतर विवाद *अचूकता* और *त्रुटिहीनता* शब्दों के विषय में कुछ भ्रम के कारण होता है, विशेषकर कि वे किस सीमा तक लागू होते हैं। उदाहरण के लिए, निम्न दो वाक्यों में भिन्नता पर ध्यान दें:

क. विश्वास और व्यावहारिक जीवन के लिए बाइबल एकमात्र अचूक नियम है।

ख. बाइबल केवल तब ही अचूक है जब वह विश्वास और व्यावहारिक जीवन के विषय में बात करती है।

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

दोनों वाक्य सुनने में एक जैसे हैं किन्तु वे मौलिक रीति से भिन्न हैं। प्रथम वाक्य में, एकमात्र शब्द आधिकारिक क्षमता के साथ एक अचूक स्रोत के रूप में पवित्रशास्त्र को पृथक करता है। दूसरे शब्दों में, पवित्रशास्त्र हमारे विश्वास का नियम है, जिसका सम्बन्ध उन सब से है जो हम विश्वास करते हैं, और यह हमारे व्यावहारिक जीवन का नियम है, जिसका सम्बन्ध उन सब से है जो हम करते हैं।

द्वितीय वाक्य में ये शब्द अपना अभिविन्यास (*orientation*) परिवर्तित करते हैं। यहाँ केवल शब्द स्वयं बाइबल के एक भाग को यह कहते हुए सीमित करता है, कि यह केवल तब ही अचूक है जब बाइबल विश्वास और व्यावहारिक जीवन के विषय में बात करती है। यह ऐसा विचार है जिसे “सीमित लुटिहीनता” कहा जाता है, और पवित्रशास्त्र को इस प्रकार से समझने का यह ढंग आज हमारे समय में प्रचलित है। विश्वास और व्यावहारिक जीवन, ये शब्द सम्पूर्ण मसीही जीवन पर लागू होते हैं, परन्तु दूसरे वाक्य में, “विश्वास और व्यावहारिक जीवन” को पवित्रशास्त्र की शिक्षा के एक भाग तक सीमित कर दिया जाता है, इसमें उन बातों को छोड़ दिया जाता है जो बाइबल इतिहास, विज्ञान, और सांस्कृतिक बातों के विषय में कहती है। दूसरे शब्दों में, बाइबल केवल तब ही आधिकारिक है जब वह धार्मिक विश्वास की बात करती है; शेष अन्य बातों पर उसकी शिक्षा में चूक होने की सम्भावना मानी जा सकती है।

कुछ समूहों में यह कहना प्रचलित हुआ है कि बाइबल सामान्य इतिहास नहीं, वरन् छुटकारे का इतिहास है—और बल छुटकारे शब्द पर दिया जाता है। फिर ऐसे सिद्धान्त बनाए जाते हैं जो अभिप्रेरणा को छुटकारा सम्बन्धित

अचूकता और त्रुटिहीनता

बातों तक सीमित रखता है, जिससे कि ऐतिहासिक आयामों में त्रुटियाँ हो सकती हैं।

परन्तु केवल इस कारण से कि बाइबल इतिहास के अन्य लेखों जैसी नहीं लिखी गई है, यह इसके ऐतिहासिक आयाम को नहीं नकारता है जिससे वह अन्तरंग रीति से सम्मिलित है। यद्यपि बाइबल वास्तव में छुटकारे का इतिहास है, यह छुटकारे का इतिहास भी है; इसका अर्थ है कि परमेश्वर द्वारा किए गए उद्धार के कार्य वास्तव में दिक्-काल (*space-time*) के संसार में घटित हुए।

विज्ञान की बातों के सम्बन्ध में, इस विचार का खण्डन किया जाना कि पृथ्वी के इतिहास के विषय में वैज्ञानिक अवधारणाओं को पवित्रशास्त्र की शिक्षा को पलटने के लिए उपयोग किया जा सकता है पुनः इस विचार को नकारता है कि बाइबल केवल उन विषयों में आधिकारिक रीति से बात करती है जिनका आत्मिक महत्व है या जो छुटकारे के विषय से सम्बन्धित है। बाइबल पृथ्वी के उद्गम, मनुष्य का आरम्भ, और वैज्ञानिक रीति से महत्वपूर्ण बातों, जैसा कि जल-प्रलय इत्यादि के विषय में बोलती है। यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि इसका यह अर्थ नहीं है कि बाइबल के विद्यार्थी के लिए वैज्ञानिक परिकल्पनाएँ या शोध व्यर्थ हैं या कि बाइबल की सामग्री को समझने में विज्ञान का कोई योगदान नहीं है। हम केवल यह कह रहे हैं कि पवित्रशास्त्र की शिक्षा को बाहरी स्रोतों के आधार पर पलटा नहीं जा सकता है।

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

मनुष्यत्व और त्रुटि

परमेश्वर द्वारा लिखित लेखों को अचूकता का गुण देना एक बात है, परन्तु लेखकों को सर्वज्ञान का गुण देना एक अलग ही बात है। सर्वज्ञान और अचूकता के मध्य सावधानी से भेद किया जाना चाहिए। यद्यपि परमेश्वर में ये दोनों गुण एक साथ पाए जाते हैं, मनुष्य के सम्बन्ध में ऐसा नहीं है। सर्वज्ञान ज्ञान के विस्तार से सम्बन्धित है जबकि अचूकता उद्घोषणाओं की विश्वसनीयता से सम्बन्धित है। छल करने की मनसा से एक जानकार व्यक्ति झूठा कथन कर सकता है। इसके विपरीत, सीमित ज्ञान वाला व्यक्ति अचूक कथन कर सकता है यदि यह सुनिश्चित किया जाए कि वे पूर्णतः विश्वसनीय हैं। इसलिए, हम कहते हैं कि यद्यपि बाइबल के लेख अभिप्रेरित हैं, इसका यह अर्थ नहीं है कि लेखकों को सब कुछ का ज्ञान था या कि वे स्वयं में अचूक थे। उनके द्वारा संचार किया गया ज्ञान व्यापक (*comprehensive*) नहीं है, परन्तु जिस सीमा तक हो सकता है यह सच और विश्वसनीय है।

कार्ल बार्थ (*Karl Barth*) जैसे बाइबलीय अचूकता के विरोधियों ने तर्क दिया है कि इस प्रकार का मत, जो अचूकता के ईश्वरीय गुण को लाता है, बाइबलीय लेखकों के सच्चे मनुष्यत्व को रद्द कर देता है। बार्थ के लिए, हमारे मनुष्यत्व के लिए आधारभूत है कि हममें चूकने की क्षमता है, और इसलिए मानव लेखकों द्वारा लिखी गई बाइबल में भी त्रुटियाँ होनी चाहिए।

अचूकता और त्रुटिहीनता

यदि चिरप्रतिष्ठित कथन एरारे एस्ट ह्यूमानुम (*errare est humanum*) है, अर्थात् “त्रुटि करना तो मनुष्य का स्वभाव है,” तो हमारा उत्तर है कि यद्यपि यह सत्य है, यह अनिवार्य नहीं है कि मनुष्य सर्वदा चूकते हैं या कि मनुष्यत्व के लिए त्रुटि करना अनिवार्य ही है। यदि ऐसी बात होती तो हमारे लिए यह दावा करना आवश्यक होता कि पतन से पूर्व आदम को त्रुटि करना ही था अन्यथा वह मनुष्य नहीं रहता, या यह कि ख्रीष्ट को, पूर्ण रीति से मनुष्य होने के लिए, सत्य को विकृत करना ही था। निस्सन्देह यह सत्य नहीं है। अभिप्रेरणा से पृथक भी, मनुष्य होने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि मनुष्य त्रुटि करे। तो यदि किसी अभिप्रेरित न हुए (*uninspired*) व्यक्ति के लिए सम्भव है कि वह बिना त्रुटि करे सत्य बोले, तो फिर यह उस व्यक्ति के लिए और कितना सम्भव होगा जो अभिप्रेरणा के प्रभाव के अन्तर्गत है?

सीमितता (*finitude*) के लिए ज्ञान का सीमित होना अनिवार्य है परन्तु ज्ञान का विकृत होना अनिवार्य नहीं। मनुष्य की सीमितता के आधार पर बाइबल के लेख की विश्वसनीयता के चरित्र को नकारा नहीं जाना चाहिए।

ख्रीष्ट का अधिकार

अन्तिम विश्लेषण में, बाइबल के अधिकार का प्रश्न ख्रीष्ट के अधिकार के प्रश्न पर निर्भर है। 1970 के दशक में, लिग्निएर मिनिस्ट्रीज़ ने पवित्रशास्त्र

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

के अधिकार के विषय पर एक सम्मेलन को प्रायोजित किया।* संसार भर से विद्वान लुटिहीनता के प्रश्न पर चर्चा करने के लिए एकत्रित हुए, और बिना किसी साँठ-गाँठ के, प्रत्येक विद्वान ने इस विषय को खीष्ट-केन्द्रित दृष्टिकोण से देखा: पवित्रशास्त्र के विषय में यीशु का विचार क्या था? इन विद्वानों की इच्छा बाइबल के विषय में उसी दृष्टिकोण को मानने की थी जो स्वयं यीशु द्वारा सिखाए गए पवित्रशास्त्र के दृष्टिकोण को प्रतिबिम्बित करती थी।

बाइबल के विषय में यीशु के दृष्टिकोण को जानने का एकमात्र उपाय है बाइबल को पढ़ना, जो कि एक ऐसा तथ्य है जो वृत्ताकार तर्क (*circular argument*) की ओर ले जाता है: यीशु ने बाइबल में लुटिहीनता की शिक्षा दी, तौभी हम केवल बाइबल के द्वारा ही जानते हैं कि यीशु ने क्या कहा था। तथापि, आलोचकों के बीच में भी इस बात को लेकर व्यापक सहमति है कि ऐतिहासिक प्रामाणिकता के सम्बन्ध में पवित्रशास्त्र के सबसे कम विवादित खण्ड वे हैं जिनमें पवित्रशास्त्र के विषय में यीशु के कथन सम्मिलित हैं। बाइबल के विषय में यीशु के दृष्टिकोण को लेकर ईश्वरविज्ञानियों के बीच में कोई गम्भीर मतभेद नहीं है। सभी पृष्ठभूमियों के विद्वान और ईश्वरविज्ञानी, भले ही वे उदारवादी (*liberals*) हों या रूढ़िवादी (*conservatives*) हों, सब इस बात से सहमत हैं कि ऐतिहासिक यीशु नासरी ने पवित्रशास्त्र के विषय में उच्च और उत्कृष्ट दृष्टिकोण पर विश्वास किया और सिखाया जो कि प्रथम शताब्दी के यहूदी धर्म (*Judaism*) में सामान्य बात थी, अर्थात् बाइबल

*देखें, *God's Inerrant Word: An International Symposium on the Trustworthiness of Scripture*, ed. John Warwick Montgomery (Calgary, Alberta: Canadian Institute for Law, Theology, and Public Policy, 1974).

अचूकता और त्रुटिहीनता

परमेश्वर द्वारा प्रेरित वचन से थोड़ा भी कम नहीं है। पवित्रशास्त्र के विषय में यीशु के दृष्टिकोण को सुसमाचारों में प्रकट किया गया है: “जब तक आकाश और पृथ्वी टल न जाएँ, व्यवस्था में से एक माला या बिन्दु भी, जब तक कि सब कुछ पूरा न हो जाए, नहीं टलेगा” (मत्ती 5:18); “पवित्रशास्त्र का खण्डन नहीं किया जा सकता” (यूहन्ना 10:35); और “तेरा वचन सत्य है” (यूहन्ना 17:17)। इसके अतिरिक्त, यीशु ने बहुधा ईश्वरविज्ञानीय विवाद का समाधान करने के लिए केवल अपनी बात को इतना कहने के द्वारा पुराने नियम पर आधारित किया, कि “लिखा है।”

बहुत ही कम विद्वान होंगे, यदि कोई हैं भी तो, जो इस विचार से असहमत होंगे कि यीशु नासरी ने वही सिखाया जिसे कलीसिया दो हजार वर्षों से सिखाती आई है। फिर भी, इन्हीं में से अनेक विद्वान पलटकर कहते हैं कि पवित्रशास्त्र के विषय में यीशु का दृष्टिकोण त्रुटिपूर्ण था। मसीही ईश्वरविज्ञानियों के द्वारा कहे ऐसे अहंकारपूर्ण कथन पर प्रत्येक व्यक्ति को आश्चर्य होना चाहिए। वे यह तर्क देते हुए दावा करते हैं कि यीशु, पवित्रशास्त्र के विषय में अपने युग के यहूदी समुदाय में प्रचलित विचार से प्रभावित था, जिसे वह अपने मानवीय स्वभाव में नहीं जानता था कि यह त्रुटिपूर्ण है। वे अपने आलोचकों को झट से बताते हैं कि कुछ बातें थीं जिन्हें मानवीय यीशु, ईश्वरीय स्वभाव में होते हुए भी नहीं जानता था। उदाहरण के लिए, जब उससे पुनः आगमन के दिन एवं घड़ी के विषय में बल देकर पूछा गया, तो यीशु ने अपने शिष्यों को बताया कि पिता को छोड़कर कोई भी उस दिन और घड़ी को नहीं जानता है (मत्ती 24:36), और ऐसा कहने के द्वारा यीशु ने स्वयं अपने ज्ञान के सीमित होने की बात की।

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

आलोचकगण यह दावा करते हैं कि यह विचार इस बात को उचित ठहराता है कि यीशु ने हमें पवित्रशास्त्र के विषय में झूठा दृष्टिकोण दिया।

इसके प्रतिउत्तर में, शास्त्रसम्मत विद्वान कहते हैं कि भले ही यीशु के मानवीय स्वभाव के पास सर्वज्ञान (*omniscience*) का गुण नहीं था, फिर भी हमारे उद्धारकर्ता होने के लिए उसके मानव स्वभाव का सर्वज्ञानी होना अनिवार्य नहीं था। उसका ईश्वरीय स्वभाव तो सर्वज्ञानी था, परन्तु मानवीय स्वभाव सर्वज्ञानी नहीं था। किन्तु यहाँ पर इससे भी महत्वपूर्ण बात खीष्ट का पाप-रहित होना है। एक ऐसे व्यक्ति के लिए इस लुटिपूर्ण शिक्षा को देना पापमय होता जो कि यह दावा कर रहा था कि वह केवल वही शिक्षा देता है जो उसे पिता से प्राप्त होती है। पवित्रशास्त्र में शिक्षा देने के विषय में एक नीति है कि बहुत लोगों को शिक्षक नहीं बनना चाहिए क्योंकि वे कठोरतम दण्ड के भागी होंगे (याकूब 3:1)। एक शिक्षक होने के नाते मेरा नैतिक उत्तरदायित्व है कि मैं अपने छात्रों से झूठ न बोलूँ। यदि मेरे छात्र मुझसे कोई प्रश्न पूछते हैं जिसका उत्तर मैं नहीं जानता हूँ, तो मेरा उत्तरदायित्व बनता है कि उन्हें बताऊँ कि मैं इसका उत्तर नहीं जानता। यदि मेरे विचार उस विषय में अनिश्चित हैं, तो मुझे उन्हें बताना चाहिए कि मैं उस उत्तर के विषय में अनिश्चित हूँ। ऐसी सावधानी आवश्यक है क्योंकि उन लोगों की सोच को प्रभावित करने के लिए शिक्षक के पास सामर्थ्य है जो उसके चरणों में अध्ययन करते हैं।

सम्पूर्ण इतिहास में यीशु नासरी की तुलना में किसी भी शिक्षक का इतना अधिक प्रभाव और अधिकार नहीं रहा। यदि उसने लोगों को बताया कि मूसा ने उसके विषय में लिखा था, तथा अब्राहम उसके दिन को देखकर आनन्दित हुआ, तथा वचन का खण्डन नहीं किया जा सकता है, और यह भी

अचूकता और लुटिहीनता

कि पवित्रशास्त्र सत्य है, परन्तु वह स्वयं ही इन बातों के विषय में लुटि कर रहा था, तो वह इस बात के लिए दोषी है; वह स्वयं ही अपने ज्ञान की निश्चयता पर एक सीमा लगाने के लिए उत्तरदायी था जहाँ पर यह सीमा वास्तव में लगनी भी चाहिए थी।

यदि यीशु बाइबल के अधिकार जैसे महत्वपूर्ण बात के विषय में अपनी शिक्षा में लुटि कर रहा था, तो मैं यह कल्पना नहीं कर सकता कि कोई भी व्यक्ति उसकी किसी भी बात को गम्भीरता से लेगा जो उसने सिखायी थी। यीशु ने कहा, “जब मैंने तुम से पृथ्वी की बातें कहीं तो तुम विश्वास नहीं करते, यदि मैं तुम को स्वर्ग की बातें बताऊँ तो कैसे विश्वास करोगे?” (यूहन्ना 3:12), किन्तु अब ईश्वरविज्ञानियों की एक ऐसी पीढ़ी है जो यह कहते हैं कि यद्यपि यीशु स्वर्ग की बातों के विषय में लुटिहीन था, परन्तु वह पृथ्वी की बातों के विषय में लुटिपूर्ण था।

फिर भी, क्योंकि बाइबल हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए पर्याप्त विश्वसनीय ऐतिहासिक जानकारी देती है कि यीशु एक नबी था, और क्योंकि यीशु स्वयं हमें बताता है कि इस जानकारी का स्रोत पूर्ण रीति से विश्वसनीय है, इसलिए हम एक वृत्ताकार तर्क (*circular argument*) में नहीं किन्तु एक प्रगतिशील तर्क (*progressive argument*) में वृद्धि कर रहे हैं। हमने इतिहास के विषय में प्रश्न पूछने के साथ आरम्भ किया था, फिर वहाँ से आलोचना तक बढ़े हैं, और फिर ऐतिहासिक विश्वसनीयता, और फिर यीशु की शिक्षा के ऐतिहासिक ज्ञान, और अन्ततः यीशु की शिक्षा तक प्रगति की है, जो हमें बताता है कि यह स्रोत न केवल थोड़ा बहुत विश्वसनीय है, किन्तु पूर्णतः विश्वसनीय है क्योंकि यह परमेश्वर के वचन से थोड़ा भी कम नहीं है।

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

जब हम कहते हैं कि बाइबल विश्वास और व्यावहारिक जीवन के लिए एकमात्र नियम है, तो यह इसलिए है क्योंकि हम विश्वास करते हैं कि यह नियम उसी प्रभु द्वारा सौंपा गया है, जिसका यह नियम है। इसलिए, हम कहते हैं कि बाइबल अचूक और त्रुटिहीन है। इन दो शब्दों में त्रुटिहीनता लघुतर शब्द है; वह स्वाभाविक रीति से अचूकता के विचार से प्रवाहित होता है—यदि किसी वस्तु में त्रुटि की क्षमता ही नहीं है, तो वह त्रुटि नहीं करती है। आलोचना के परीक्षण में सफल होने के लिए, बाइबल को केवल अपने ही दावों के साथ समनुरूप होना है, और यदि हम सत्य को वैसे परिभाषित करें जैसे नया नियम करता है, तो फिर बाइबल की त्रुटिहीनता पर विवाद करने का कोई वैध कारण नहीं है। यदि परमेश्वर का वचन असफल नहीं हो सकता है, और यदि उसमें त्रुटि करने की क्षमता नहीं है, तो वह न ही असफल होता है और न ही त्रुटि करता है।

अध्याय चार

ग्रन्थसंग्रहण

Canonicity

बाइबल शब्द यूनानी भाषा के बिबलोस शब्द से आता है, जिसका अर्थ “पुस्तक” है। यद्यपि बाइबल एक ही ग्रन्थ में बन्धी हुई है, किन्तु यह एक पुस्तक नहीं है; वरन्, यह छियासठ अलग-अलग पुस्तकों का संग्रह है। यह पुस्तकों का एक पुस्तकालय है। जबकि इसमें इतनी सारी पुस्तकें हैं जो एक साथ मिलकर पवित्रशास्त्र का निर्माण करती हैं, तो हम कैसे जानते हैं कि पुस्तकों के इस संग्रह या इस पुस्तकालय में उचित पुस्तकों को सम्मिलित किया गया है? यह प्रश्न ग्रन्थसंग्रहण (*canonicity*) के विषय के अन्तर्गत आता है।

हमें कैनन (*canon*) शब्द (हिन्दी में ग्रन्थसंग्रह) एक अन्य यूनानी शब्द से प्राप्त होता है, कॅनोन (*kanōn*), जिसका अर्थ “मापक छड़ी” या

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

“मानदण्ड” है। बाइबल को “पवित्रशास्त्र का ग्रन्थसंग्रहण” (*the canon of Scripture*) कहने का अर्थ है कि उसकी छियासठ पुस्तकें एक साथ मिलकर कलीसिया के लिए उच्चतम मापक छड़ी या अधिकार का कार्य करती हैं। बाइबल को प्रायः ऐसे वर्णन किया गया है *नॉर्मा नॉर्मान्स एट सिने नॉर्माटिवा* (*norma normans et sine normativa*)। इस कथन में तीन बार *नॉर्म* (*norm*) शब्द के विभिन्न रूप आते हैं। *नॉर्मा नॉर्मान्स* का अर्थ है “मानकों का मानक,” और *सीने नॉर्माटिवा* का अर्थ है “बिना मानक के।” बाइबल सब मानदण्डों का मानक या मानदण्ड है, और यह किसी अन्य मानदण्ड के द्वारा नहीं मापा जा सकता है।

कैनन (ग्रन्थसंग्रह) का विस्तार

हमने पवित्रशास्त्र की विश्वसनीयता का परीक्षण करते हुए अभिप्रेरणा, अचूकता और लुटिहीनता के विषयों को देखा है। इस अध्याय में, हम पवित्रशास्त्र के स्वभाव के विषय पर नहीं किन्तु उसकी परिसीमा के विषय में विचार कर रहे हैं; अर्थात् पवित्रशास्त्र का ग्रन्थसंग्रह कितनी दूर तक विस्तृत होता है?

ग्रन्थसंग्रह के विषय में अनेक भ्रान्तियाँ हैं। आलोचक वाद-विवाद करते हैं कि उन पुस्तकों की बड़ी संख्या के कारण जिन्हें बाइबल में सम्मिलित किया जा सकता था—उनका दावा है कि वे दो हज़ार से अधिक थीं—ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः कुछ ऐसी पुस्तकों को नहीं सम्मिलित किया गया जिनको किया जाना चाहिए था, जबकि अन्य पुस्तकें जो सम्मिलित होने के योग्य नहीं थीं वे ग्रन्थसंग्रह में सम्मिलित हो गईं।

तथापि, सत्य तो यह है कि अधिकाँश पुस्तकें जो ग्रन्थसंग्रह में सम्मिलित होने के लिए विचाराधीन थीं, आरम्भिक कलीसिया द्वारा तत्परता और सरलता से तिरस्कृत कर दी गईं क्योंकि वे एकदम स्पष्ट रीति से छलपूर्ण थीं।

दूसरी शताब्दी में गूढ़ज्ञानवादी (*Gnostic*) विधर्मियों (*heretics*) ने प्रेरितिय अधिकार का दावा करते हुए, अपनी पुस्तकों को लिखा तथा उन्हें दूर-दूर तक पहुँचा दिया। किन्तु, ग्रन्थसंग्रह में सम्मिलित करने के लिए इन पुस्तकों पर कभी भी गम्भीरता से विचार नहीं किया गया, इसलिए यह कहना दिशा भ्रमित करने वाली बात है कि दो हजार से अधिक सम्भावित पुस्तकें थी। यदि हम कलीसिया द्वारा चयन करने की ऐतिहासिक प्रक्रिया पर ध्यान दें, ऐसी प्रक्रिया जो बड़ी सावधानी तथा ध्यानपूर्वक जाँच पड़ताल द्वारा संचालित की गई थी, तो हम पाते हैं कि केवल तीन हटाए गए लेखों को नए नियम में सम्मिलित करने के लिए गम्भीरता से विचार किया गया था: *डिडाखे* (*Didache*), *हेरमास का चरवाहा* (*The Shepherd of Hermas*), और रोम के क्लेमेन्ट की पहली पत्र (the *First Letter of Clement of Rome*)। ये लेख पहली शताब्दी के अन्त से या फिर दूसरी शताब्दी के आरम्भ से हैं, और यदि उनको कोई पढ़ता है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके लेखक जानते थे कि उनके कार्य प्रेरितों-से-कम-अधिकार वाले (*subapostolic*) और प्रेरितों-के-उपरान्त (*postapostolic*) लिखे जा रहे थे। इस प्रकार उन्होंने अपने आप को प्रेरितों और उनके लेखों के अधिकार के अधीन समर्पित किया।

ये हटाए गए लेख कलीसिया के लिए महत्वपूर्ण और लाभदायक हैं, और वे इसी रीति से सम्पूर्ण कलीसियाई इतिहास में रहे हैं, परन्तु इस बात को लेकर कभी संघर्ष नहीं रहा है कि इनको ग्रन्थसंग्रह में सम्मिलित करना चाहिए या

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

नहीं। आरम्भिक शताब्दियों में ग्रन्थसंग्रह को लेकर अधिकतर विवाद हटाई गई पुस्तकों से सम्बन्धित नहीं था परन्तु उस विषय पर था कि वास्तव में कौन सी पुस्तकें ग्रन्थसंग्रह में सम्मिलित हैं। कुछ समय तक इस बात पर विवाद चलता रहा कि क्या इब्रानियों, 2 पतरस, 2 और 3 यूहन्ना, यहूदा और प्रकाशितवाक्य की पुस्तकों को बाइबल में सम्मिलित किया जाना चाहिए या नहीं।

ग्रन्थसंग्रह की स्थापना

कुछ अन्य लोग ग्रन्थसंग्रह के अधिकार के प्रति आपत्ति जताते हैं क्योंकि यह ख्रीष्ट के जीवन और मृत्यु के बहुत समय के पश्चात् तक, अर्थात् चौथी शताब्दी तक स्थापित नहीं हुआ था। ग्रन्थसंग्रह का स्थापित किया जाना एक प्रक्रिया थी जिसने कुछ समय का अन्तराल लिया; किन्तु, इसका अर्थ यह नहीं है कि चौथी शताब्दी के अन्त तक कलीसिया के पास नया नियम नहीं था। कलीसिया के एकदम आरम्भ से ही, नए नियम की आधारभूत पुस्तकें, जिनको हम आज पढ़ते और मानते हैं, उपयोग में थीं, और वे अपने प्रेरिततीय अधिकार के कारण एक ग्रन्थसंग्रह के रूप में कार्यान्वित थीं।

जिस प्रकरण ने ग्रन्थसंग्रह की स्थापना को प्रेरित किया, वह था मार्सियन (Marcion) नामक एक विधर्मी का प्रकट होना, जिसने स्वयं अपना ग्रन्थसंग्रह बनाया था। गूढ़ज्ञानवाद (Gnosticism) के प्रभाव के कारण, मार्सियन यह विश्वास करता था कि पुराने नियम में प्रदर्शित परमेश्वर, संसार का सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर नहीं है वरन् वह तो “डेमिअर्ज” (demiurge) नामक एक छोटा देवता था जो दुर्व्यवहारी था, किन्तु ख्रीष्ट तो सच्चे परमेश्वर को

प्रकट करने के लिए और हमें इस कठोर-स्वभाव के देवता से बचाने के लिए आया था। इसके परिणामस्वरूप, मार्सियन ने नए नियम से उन सब बातों को छाँट दिया जो ख्रीष्ट के साथ सकारात्मक रीति से यहोवा, अर्थात् पुराने नियम के परमेश्वर को जोड़ सकती थी। मत्ती का सुसमाचार तथा अन्य सुसमाचारों में से बहुत सी सामग्री को हटा दिया गया था, साथ ही प्रत्येक ऐसे सन्दर्भ को भी जिसमें ख्रीष्ट ने परमेश्वर को पिता करके उल्लेखित किया था। मार्सियन ने पौलुस के कुछ लेखों को भी निकाल दिया था। इसके परिणामस्वरूप अन्ततः उसने नये नियम का एक छोटा, संक्षिप्त तथा सम्पादित संस्करण प्रस्तुत किया। इस विधर्मता ने कलीसिया को बाइबल की वास्तविक पुस्तकों की आधिकारिक तथा औपचारिक सूची प्रस्तुत करने के लिए उत्साहित किया।

ग्रन्थसंग्रहण के चिह्न

ग्रन्थसंग्रहणीय प्रमाणिकता को निर्धारित करने हेतु, कलीसिया ने तीन आयामों के परीक्षण को लागू किया। कुछ लोग इस तथ्य से परेशान होते हैं कि चयन की एक प्रक्रिया थी, किन्तु इस प्रक्रिया में दिखाई गई सावधानी से हमें आश्चस्त होना चाहिए।

किसी पुस्तक के अधिकार की पुष्टि करने के लिए जिस प्रथम चिह्न या परीक्षण का उपयोग किया गया था, वह था उसका प्रेरितीय उद्गम (*Apostolic origin*) होना, जिसके दो आयाम थे। प्रेरितीय उद्गम का होने के लिए, किसी लेख को या तो किसी प्रेरित द्वारा या किसी प्रेरित के प्रत्यक्ष एवं समीपस्थ (*immediate*) अनुमोदन (*sanction*) के अधीन लिखा गया

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

होना चाहिए। उदाहरण के लिए, रोमियों की पुस्तक के प्रति किसी को सन्देह नहीं था क्योंकि सब ने यह माना था कि यह प्रेरित पौलुस द्वारा लिखी गई थी और इसलिए इसमें प्रेरितीय अधिकार निहित था। उसी रीति से, न तो मत्ती के सुसमाचार और न ही यूहन्ना के सुसमाचार पर प्रश्न उठाया गया क्योंकि वे यीशु के प्रेरितों द्वारा लिखे गए थे। लूका रचित सुसमाचार पर प्रश्न नहीं उठाया गया क्योंकि लूका पौलुस का साथी था और उसके साथ सुसमाचार-प्रसार हेतु यात्राओं में गया था। उसी प्रकार, मरकुस को प्रेरित पतरस के प्रवक्ता के रूप में देखा गया, अतः पतरस का अधिकार मरकुस के सुसमाचार के पीछे था। आरम्भ से ही, चारों सुसमाचारों के विषय में और पौलुस के आधारभूत लेखों को लेकर प्रेरितीय अधिकार और बाइबलीय ग्रन्थसंग्रहण के विषय में कोई सन्देह नहीं था।

ग्रन्थसंग्रह में स्वीकृति के लिए दूसरा चिह्न था आरम्भिक कलीसिया द्वारा ग्रहण किया जाना। इफिसियों की पत्नी ऐसा उदाहरण है जो इस श्रेणी में सही बैठती है। यह माना जाता है कि पौलुस ने इस पत्नी के लिए चाहा था कि यह न केवल इफिसियों की कलीसिया के लिए किन्तु बड़ी मात्रा में अन्य श्रोताओं तक पहुँचेगी। इसको एक परिपत्र (*circular letter*) के रूप में लिखा गया था, जिसकी रचना इफिसुस के आसपास के क्षेत्र की सब कलीसियाओं में प्रसारित करने के लिए की गई थी। यह न केवल इफिसियों की पत्नी के लिए, वरन् पौलुस की अन्य पत्तियों के विषय में भी सत्य था। सुसमाचार के लेख भी पहली शताब्दी की कलीसियाओं में व्यापक रीति से प्रसारित हुए। कलीसिया में ऐतिहासिक छानबीन की प्रक्रिया में, जब यह विचार किया जा रहा था

कि ग्रन्थसंग्रह में किसे सम्मिलित करना चाहिए, तो इस बात पर ध्यान दिया गया कि किस रीति से आरम्भ ही से उक्त लेख को आधिकारिक रीति से स्वीकारा गया और उद्धरित किया गया था। क्लेमेन्ट की पहली पत्नी में, जिसे ग्रन्थसंग्रहणीय के रूप में नहीं पहचाना गया था, क्लेमेन्ट कुरिन्थियों को लिखी गई पौलुस की पत्नी को उद्धरित करता है, तथा इसके द्वारा यह दर्शाता है कि 1 कुरिन्थियों को आरम्भिक मसीही लोगों द्वारा आधिकारपूर्ण ग्रहण किया गया था। स्वयं बाइबल में ही प्रेरित पतरस, पौलुस की पत्नियों का ऐसे वर्णन करता है जैसे कि वे पवित्रशास्त्र की श्रेणी में सम्मिलित हैं (2 पतरस 3:16)।

ग्रन्थसंग्रहण का तीसरा चिह्न अधिकांशतः विवाद का कारण रहा था। वे पुस्तकें जो प्रेरिततीय समझी गईं या किसी प्रेरित के द्वारा अनुमोदित की गई थीं तथा आरम्भिक कलीसिया के द्वारा ग्रहण भी की गई थी, वे तो नए नियम का आधारभूत भाग बन गईं और बिना किसी वास्तविक वाद विवाद के ग्रन्थसंग्रह में स्वीकृत हुईं, किन्तु कुछ पुस्तकें एक अन्य श्रेणी में थीं जिनके विषय में कुछ विवाद हुआ था। उनमें से एक विवादित विषय था, प्रमुख पुस्तकों के साथ इन पुस्तकों के सिद्धान्त एवं शिक्षण की संगतता (*compatibility*)। यही वह बात थी जिसने इब्रानियों की पत्नी के विषय में कुछ प्रश्नों को उत्पन्न किया था। इस पत्नी के एक भाग, अर्थात् इब्रानियों 6 का अर्थानुवाद प्रायः ऐसे किया गया है कि मानो जैसे यह संकेत कर रहा हो कि ख्रीष्ट द्वारा छुड़ाए गए लोग अपने उद्धार को खो सकते हैं, और यह एक ऐसी शिक्षा प्रतीत होती है जो कि इस विषय पर शेष बाइबल की शिक्षा से मेल नहीं खाती है। परन्तु उन अध्यायों का अर्थानुवाद इस प्रकार से किया जा सकता है कि वे शेष पवित्रशास्त्र से मेल

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

खाए। जिस बात ने विवाद को अन्ततः इब्रानियों के पक्ष में कर दिया वह यह तर्क था कि इसका लेखक पौलुस था। आरम्भिक शताब्दियों में कलीसिया यह विश्वास करती थी कि पौलुस इब्रानियों का लेखक था, और इस बात ने इस पत्नी को ग्रन्थसंग्रह में स्थान दिलाया था। विडम्बना की बात यह है कि आज थोड़े ही विद्वान हैं जो यह विश्वास करते हैं कि पौलुस ने इसे लिखा था, परन्तु उससे भी थोड़े विद्वान हैं जो ग्रन्थसंग्रह में उसके स्थान को नकारेंगे।

ग्रन्थसंग्रह का विषय-क्षेत्र

सोलहवीं शताब्दी में रोमन कैथोलिक चर्च और प्रोटेस्टेन्ट ख्रीष्टियों के बीच में पुराने नियम के शास्त्रों के विषय-क्षेत्र और विस्तार को लेकर एक विवाद उठा, विशेषकर अपोक्रीफा (*Apocrypha*) को लेकर, अर्थात् ऐसी पुस्तकों का समूह जिन्हें पुराने नियम और नए नियम के बीच वाले समयकाल में लिखा गया था। रोमन कैथोलिक कलीसिया ने अपोक्रीफा को अपनाया; धर्मसुधार (*रिफॉर्मेशन*) की अधिकतर कलीसियाओं ने ऐसा नहीं किया। यह विवाद इस बात पर केन्द्रित था कि पहली शताब्दी की कलीसिया तथा स्वयं यीशु ने किन पुस्तकों को ग्रन्थसंग्रह के भाग के रूप में माना था। पलस्तीन भू-खण्ड के सब प्रमाण संकेत करते हैं कि पलस्तीनी-यहूदी ग्रन्थसंग्रह (*Jewish Palestinian canon*) में अपोक्रीफा को सम्मिलित नहीं किया गया था, जबकि सिकन्दरिया (*Alexandria*) में कईयों ने इसे सम्मिलित किया था जो कि यूनानीवादी (*Hellenistic*) यहूदियों का सांस्कृतिक केन्द्र था। परन्तु

नवीन अध्ययन सुझाते हैं कि सिकन्दरिया के ग्रन्थसंग्रह में भी अपोक्रीफा को केवल द्वितीय स्तर का ही पहचाना गया था, न कि बाइबलीय अधिकार के पूर्ण स्तर पर। इसलिए यह प्रश्न बना हुआ है कि कौन सही था—रोमन कैथोलिक कलीसिया या प्रोटेस्टेन्ट कलीसिया? दूसरे शब्दों में, हम किस अधिकार से यह निर्धारित करते हैं कि ग्रन्थसंग्रहण क्या है?

प्रोटेस्टेन्ट मसीहियों के अनुसार, बाइबल में पाई जानी वाली प्रत्येक पुस्तक एक अचूक पुस्तक है, किन्तु वह प्रक्रिया अचूक नहीं थी जिसके द्वारा कलीसिया ने निर्णय लिया कि किस पुस्तक को सम्मिलित किया जाना चाहिए। हम विश्वास करते हैं कि ग्रन्थसंग्रह निर्धारित करने की प्रक्रिया में कलीसिया को परमेश्वर की दया के द्वारा ईश्वरीय-प्रावधान में होकर मार्गदर्शन दिया गया था और इसके परिणामस्वरूप उसने सही निर्णय लिया, इसी कारण वे सभी पुस्तकें बाइबल में हैं जिनको बाइबल में होना चाहिए। परन्तु, हम यह नहीं विश्वास करते हैं कि न उस समय और न अब, कलीसिया अपने आप में अचूक थी। इसके विपरीत, रोमन कैथोलिक शिक्षा कहती है कि हमारे पास सही पुस्तकें इसलिए हैं क्योंकि कलीसिया अचूक है और जो कुछ भी कलीसिया निर्णय करती है वह अचूक निर्णय होता है। रोमन कैथोलिक समझ में, ग्रन्थसंग्रह का निर्माण कलीसिया के अधिकार पर टिका है, जबकि प्रोटेस्टेन्ट समझ में यह परमेश्वर के ईश्वरीय-प्रावधान पर टिका है।

मैं आपको ग्रन्थसंग्रह के विकास का और अधिक अध्ययन करने के लिए उत्साहित करूँगा। अब निष्कर्ष में मुझे इस बात पर बल देने दीजिए कि

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

यद्यपि एक ऐतिहासिक जाँच-पड़ताल की गई थी, मेरा विश्वास है कि परमेश्वर ने कलीसिया को अन्तिम निष्कर्ष पर पहुँचाया, और हमें पूर्ण रीति से आश्वस्त होना चाहिए कि पवित्रशास्त्र के ग्रन्थसंग्रह में सटीक पुस्तकों को सम्मिलित किया गया था।

अध्याय पाँच

अधिकार और अर्थानुवाद

Authority and Interpretation

कुछ वर्ष पूर्व, मेरी भेंट एक पुराने मित्र से हुई। हमने महाविद्यालय में एक साथ अध्ययन किया था, और उन वर्षों के अन्तराल में वह और मैं प्रत्येक रात्रि को बाइबल अध्ययन और प्रार्थना करने के लिए मिलते थे। महाविद्यालय के उपरान्त एक दूसरे से हमारा सम्पर्क टूट गया, इसलिए मैं उसे देखकर अत्यधिक प्रसन्न हुआ। हमारी बातचीत के मध्य, उसने मुझे बताया कि महाविद्यालय के दिनों के पश्चात्, पवित्रशास्त्र के विषय में उसका विचार परिवर्तित हो गया था; वह अब बाइबल की प्रेरणा पर विश्वास नहीं करता है। इसके विपरीत, उसने कहा कि वह अब यह विश्वास करता है कि आत्मिक अधिकार कलीसिया के पास है।

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

ऐतिहासिक वाद-विवाद

अन्तिम विश्लेषण में, प्रश्न यह है कि क्या कलीसिया के लिए निर्णायक निर्विवादित अधिकार पवित्रशास्त्र में पाए गए प्रेरितों के वचनों में पाया जाता है, या उन शिक्षकों के समूह में जो वर्तमान में परमेश्वर के झुण्ड की देखरेख करने वालों के रूप में सेवा कर रहे हैं? इस विषय पर सोलहवीं शताब्दी में विवाद हुआ था, जिस पर उस समय धर्मसुधारकों ने यह निर्धारित किया कि केवल पवित्रशास्त्र ही परमेश्वर का सर्वश्रेष्ठ निर्णायक, आधिकारिक प्रकाशन है; कलीसिया के पास पवित्रशास्त्र के तुल्य कोई अधिकार नहीं है। परन्तु जब धर्मसुधार का प्रत्युत्तर देने के लिए रोमन कैथोलिक कलीसिया सोलहवीं शताब्दी के मध्य में ट्रेन्ट की महासभा (*Council of Trent*) में एकत्रित हुई, तो उस महासभा के चौथे सत्र ने कलीसिया के अधिकार और पवित्रशास्त्र के अधिकार के सम्बन्ध को सम्बोधित किया। उस सत्र में, रोमन कैथोलिक कलीसिया ने बाइबल की प्रेरणा और अधिकार पर भरोसे का अङ्गीकार किया और साथ में यह भी दावा किया कि परमेश्वर कलीसिया की परम्पराओं के द्वारा अपने आप को प्रकट करता है।

हम परमेश्वर के सत्य को बाइबल के अतिरिक्त अन्य स्थानों में पा सकते हैं। हम इसे ईश्वरविज्ञान की खरी पुस्तकों में पा सकते हैं, जब तक कि वे खरी हैं, किन्तु वे उस विशेष प्रकाशन का मूल स्रोत नहीं हैं। परन्तु, रोमन कैथोलिक कलीसिया “दोहरे-स्रोत सिद्धान्त” (*dual-source theory*) को मानती है, जिसमें विशेष प्रकाशन के दो स्रोत हैं, उनमें से एक है पवित्रशास्त्र तथा दूसरा

अधिकार और अर्थानुवाद

कलीसिया की परम्परा है। इस सिद्धान्त का प्रभाव यह हुआ कि जब अधिकार की बात आती है तो कलीसिया को बाइबल के साथ ही एक समान स्तर पर रखा जाता है।

जब यूरोप महाद्वीप पर युद्ध छिड़ गया तो ट्रेन्ट की महासभा का चौथा सत्र एकाएक स्थगित किया गया, इसलिए महासभा में वास्तव में क्या हुआ उस विषय पर कुछ अभिलेख अस्पष्ट हैं। चौथे सत्र के मूल प्रारूप में, यह अध्यादेश पढ़ा गया कि “अनेक सत्य . . . आँशिक रूप से [पार्टिम-partim] पवित्रशास्त्र में और आँशिक रूप से [पार्टिम-partim] अलिखित परम्पराओं में पाए जाते हैं।” किन्तु महासभा में विचार-विमर्श में एक निर्णायक क्षण पर, दो पादरी (priests) “पार्टिम . . . पार्टिम” कथन के विरोध में उठ खड़े हुए। उन्होंने इस आधार पर विरोध किया कि यह दृष्टिकोण पवित्रशास्त्र की अद्वितीयता (uniqueness) और पर्याप्तता (sufficiency) को नष्ट कर देगा। उस घटना के उपरान्त हमें केवल इतना ज्ञात है कि “आँशिक रूप से . . . आँशिक रूप से” शब्दों को खण्ड से हटाया गया और उनके स्थान पर “और” (एट-et) शब्द को जोड़ा गया। क्या इसका अर्थ यह था कि महासभा ने विरोध का प्रतिउत्तर देते हुए सम्भवतः पवित्रशास्त्र और परम्परा के बीच के सम्बन्ध को जानबूझ कर अस्पष्ट छोड़ा? क्या यह परिवर्तन केवल शैलीगत (stylistic) था, अर्थात् कि महासभा ने अभी भी प्रकाशन के दो भिन्न स्रोतों को बनाए रखा था? केवल ट्रेन्ट की महासभा के अभिलेखों से हम इन प्रश्नों के उत्तर को नहीं जानते हैं, किन्तु कलीसिया के आगामी अध्यादेशों (decrees) और निर्णयों से हम जानते हैं, तथा हाल ही में पोप द्वारा उद्घोषित हुमानी

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

जेनेरिस (*Humani Generis*) (1950) अभिलेख में पोप पायस XII (*Pope Pius XII*) ने बिना किसी अस्पष्टता के साथ कहा कि कलीसिया विशेष प्रकाशन के दो भिन्न स्रोतों को स्वीकारती है।

इस प्रकार से, रोमन कैथोलिक कलीसिया अपने धर्मसिद्धान्त (*doctrine*) के लिए कलीसिया की परम्परा तथा बाइबल दोनों से गुहार लगाती है, और यह कलीसिया-एकतावर्धक (*ecumenical*) वार्तालाप को अत्यन्त कठिन बनाती है। जब किसी विशेष सिद्धान्त की समीक्षा की जाती है, तो प्रोटेस्टेन्ट अपनी स्थिति को कड़ाई से बाइबल के आधार पर स्थापित करना चाहते हैं, जबकि रोम तो कलीसियाई महासभा के निर्णयों तथा पोप की उद्घोषणाओं को सम्मिलित करना चाहता है। ऐसा हम विभिन्न विषयों में देखते हैं जैसे कि मरियम का निष्कलंक गर्भाधान (*immaculate conception*)। यद्यपि ऐसा कोई सिद्धान्त पवित्रशास्त्रों में कहीं नहीं पाया जाता है, फिर भी रोमन कैथोलिक लोग इस सिद्धान्त को परम्परा के आधार पर स्थापित करते हैं।

सोला स्क्रिप्टुरा (*sola Scriptura*) को मानने वालों के प्रतिउत्तर में, रोमन कैथोलिक कलीसिया यह तर्क देती है कि क्योंकि कलीसिया के निर्णय के द्वारा कुछ पुस्तकों को औपचारिक रीति से ग्रन्थसंग्रह में जोड़ा गया था, इसलिए बाइबल का अधिकार कलीसिया के अधिकार के अधीन है और एक अत्यधिक वास्तविक अर्थ में बाइबल अपने स्थायी अधिकार को कलीसिया के उच्चतम अधिकार से प्राप्त करती है। प्रोटेस्टेन्ट इस बात को बाइबलीय, ईश्वरविज्ञानीय और ऐतिहासिक कारणों से तिरस्कारते हैं। धर्मसुधारकों ने

अधिकार और अर्थानुवाद

बाध्यकारी अधिकार (*binding authority*) को पवित्रशास्त्र तक ही इसलिए सीमित रखा क्योंकि वे आश्वस्त थे कि पवित्रशास्त्र परमेश्वर का वचन है और केवल परमेश्वर ही विवेक को बाध्य कर सकता है तथा परम अधिकार रखता है।

रोमन कैथोलिक कलीसिया यह दावा अवश्य करती है कि केवल परमेश्वर ही परम अधिकारी है, किन्तु वह यह तर्क देती है कि परमेश्वर ने वह अधिकार कलीसिया को प्रदान किया है। वे मानते हैं कि वह तब हुआ जब यीशु ने पतरस से कहा, “तू पतरस है, और इसी चट्टान पर मैं अपनी कलीसिया बनाऊँगा, और अधोलोक के फाटक उस पर प्रबल न होंगे” (मत्ती 16:18)। पतरस और प्रेरितों का अधिकार उनके उत्तराधिकारियों को प्राप्त हुआ, जिसे “प्रेरितीय उत्तराधिकार” (*Apostolic succession*) कहा जाता है। इस विश्वास का रोमन कैथोलिक विचार यह दावा करता है कि रोम का बिशप अर्थात् पोप, पतरस के स्थान पर उसके उत्तराधिकारी के रूप में बैठता है और इसलिए वह पृथ्वी पर ख्रीष्ट के प्रतिनिधि के रूप में पतरस के अधिकार को कार्यान्वित करता है।

क्या बाइबल स्पष्ट रीति से प्रेरितीय उत्तराधिकार की पुष्टि करती है या नहीं, यह तो विवादित विषय है, और इस बात पर विवाद बना हुआ है कि जब कैसरिया फिलिप्पी में यीशु ने कहा कि वह चट्टान पर अपनी कलीसिया का निर्माण करेगा, तो उसके कथन का सटीक तात्पर्य क्या था। हम जानते हैं कि एक नियुक्तिकरण की प्रक्रिया थी। ख्रीष्ट तो नियुक्त किया गया उत्कृष्ट प्रेरित है, और यह बात तब दिखाई देती है जब उसने कहा, “मैंने अपने आप

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

कुछ नहीं कहा, परन्तु पिता जिसने मुझे भेजा है उसी ने आज्ञा दी है कि क्या कहूँ और क्या बोलूँ” (यूहन्ना 12:49)। ख्रीष्ट ने दावा किया कि वह परमेश्वर के अधिकार से बोलता था, इसलिए जब कलीसिया ख्रीष्ट को प्रभु के रूप में स्वीकार करती है, तो वह स्वीकार कर रही है कि कलीसिया के शिरोमणि होने के कारण ख्रीष्ट के पास अधिकार है और इसलिए वह कलीसिया के सब अन्य भागों से श्रेष्ठ है।

यह कहने में कि उसने पवित्रशास्त्र को “प्राप्त किया,” कलीसिया ने माना कि ग्रन्थसंग्रहण की सभी पुस्तकों के पास सब पर बाध्यकारी अधिकार है। कलीसिया इतनी अभिमानी नहीं थी कि यह दृढ़तापूर्वक कहे कि वह ग्रन्थसंग्रह का निर्माण कर रही थी या फिर ग्रन्थसंग्रह ने अपना अधिकार कलीसिया से प्राप्त किया। यदि आज परमेश्वर मेरे सामने उपस्थित होता है और मैं उससे परमेश्वर के रूप में अपनी पहचान को सत्यापित करने के लिए कहता और यदि वह ऐसा इस रीति से करता कि मैं उसके अधिकार के सामने झुकने के लिए विवश हो जाता, तो मेरे द्वारा उसके अधिकार को मानना उसको ऐसा अधिकार नहीं प्रदान करता जो उसके पास पहले से नहीं था। मैं केवल उस अधिकार को पहचान रहा होऊँगा जो पहले से ही है और इसलिए उसके सामने झुक रहा होऊँगा। जब कलीसिया पवित्रशास्त्र के ग्रन्थसंग्रह को औपचारिक रूप से पहचानने की प्रक्रिया में सम्मिलित हुई तो आरम्भिक शताब्दियों के समय में उसने ठीक ऐसा ही किया।

कलीसिया सर्वदा से बाइबल के अधिकार के अधीन है। इसका अर्थ यह नहीं है कि कलीसिया के पास कोई भी अधिकार नहीं है। राज्य सरकार और

अधिकार और अर्थानुवाद

माता-पिता के पास अधिकार है, परन्तु वे अधिकार परमेश्वर द्वारा सौंपे गए हैं। उनके पास स्वयं परमेश्वर के वचन के तुल्य परम अधिकार नहीं है। इसलिए कोई भी अधिकार जो कलीसिया के पास है वह पवित्रशास्त्र के अधिकार के अधीन है।

अर्थानुवाद

भले ही हम पवित्रशास्त्र के अधिकार पर सहमत हों, फिर भी प्रश्न यह है कि हम बाइबल के ज़िम्मेदार अर्थानुवादक (*interpreter*) कैसे बनें। हम अचूक नहीं हैं, और कुछ बिन्दुओं पर हम पवित्रशास्त्र को विकृत कर सकते हैं। इसलिए हमें बाइबल के अर्थानुवाद के आधारभूत सिद्धान्तों के विषय में कुछ सीखने की आवश्यकता है।*

व्याख्याशास्त्र (*hermeneutics*) की समाविष्ट (*comprehensive*) प्रणाली को विस्तार से देखे बिना, बाइबल के अध्ययन के कुछ आधारभूत सिद्धान्तों (*principles*) पर ध्यान देना हमारे लिए अच्छा होगा। प्रथम यह है कि पवित्रशास्त्र के स्थल को व्याकरणिक-ऐतिहासिक अर्थनिरूपण (*grammatical-historical exegesis*) द्वारा अर्थानुवादित किया जाना चाहिए। व्याकरणिक-ऐतिहासिक उस प्रक्रिया के लिए एक तकनीकी नाम है

* R.C. Sproul, *Knowing Scripture*, rev. ed. (Downers Grove, Ill.: InterVarsity, 2009), बाइबल का अर्थानुवाद कैसे किया जाए, इसके मूल सिद्धान्तों के विषय में साधारण विश्वासी के लिए मार्गदर्शिका प्रदान करती है, जिससे कि लोग परमेश्वर के वचन को बुद्धिपूर्ण रीति से न समझें, न उसकी बुद्धिपूर्ण अर्थानुवाद करें, और न उसे तोड़ें-मरोड़ें।

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

जिसमें अर्थानुवाद करते समय हम लिखे गए लेखों के ढाँचा और समयकाल को गम्भीरता से लेते हैं। बाइबल के अर्थानुवादकों के पास यह छूट नहीं है कि वे स्वयं स्थल के व्याकरण के ढाँचा और रूप का विरोध करते हुए स्थलों की आत्मिक (*spiritual*) या रूपक-कथात्मक (*allegorical*) व्याख्या करें। बाइबल को इस रीति से पुनःअर्थानुवादित नहीं किया जाना चाहिए जिससे कि वह वर्तमान के दर्शनशास्त्र से मेल खाए, परन्तु उसे उस अर्थ और शब्दों के उस उपयोग के अनुसार समझा जाना चाहिए जो उसके लिखने के समय से मेल खाए। व्याकरणिक-ऐतिहासिक अर्थनिरूपण को मानने का अर्थ है कि इस बात की अनुमति न दें कि बाइबल को आधुनिक विचारधाराओं के द्वारा आकार दिया जाए। बाइबल को उस रीति से अर्थानुवादित किया जाना चाहिए जैसी वह लिखी गई, उसे हमारे युग की मान्यताओं के अनुसार पुनःअर्थानुवादित नहीं किया जाना चाहिए कि हम क्या चाहते हैं कि क्या लिखा जाना चाहिए था।

दूसरा सिद्धान्त यह है कि हमें स्वयं पवित्रशास्त्र में पाए जाने वाले साहित्यिक रूपों और उपकरणों पर ध्यान देना चाहिए। यह लूथर और धर्मसुधारकों द्वारा दिए गए अर्थानुवाद के सिद्धान्तों से मेल खाता है। किसी क्रिया को क्रिया के रूप में अर्थानुवादित किया जाना चाहिए, तथा संज्ञा को संज्ञा के रूप में, दृष्टान्त को दृष्टान्त के रूप में, शिक्षात्मक (*didactic*) साहित्य को शिक्षात्मक साहित्य के रूप में, ऐतिहासिक वृत्तान्त को ऐतिहासिक वृत्तान्त के रूप में, कविता को कविता के रूप में, इत्यादि। ऐतिहासिक वृत्तान्त को कविता बनाना या कविता को ऐतिहासिक वृत्तान्त बनाना स्थल के अभिप्रायित (*intended*) अर्थ का

अधिकार और अर्थानुवाद

उल्लंघन होगा। इसलिए, बाइबल के सभी अर्थानुवादकों के लिए महत्वपूर्ण है कि वे पवित्रशास्त्र में पाए जाने वाले साहित्यिक रूप और व्याकरणिक ढाँचों को जानें। स्थल के सही अर्थानुवाद के लिए इन रूपों का विश्लेषण सटीक और उचित है।

तीसरा सिद्धान्त यह है कि पवित्रशास्त्र को पवित्रशास्त्र का अर्थानुवाद करना चाहिए। ऐतिहासिक रीति से इस सिद्धान्त को “विश्वास की सादृश्यता” (*analogy of faith*) कहा जाता है। यह इस विश्वास पर आधारित है कि बाइबल परमेश्वर की ओर से एक एकीकृत (*unified*), समनुरूप (*consistent*), सुसंगत (*coherent*) वचन है। किसी भी खण्ड का ऐसा अर्थानुवाद अमान्य है जो ऐसा अर्थ प्रकट करे जो पवित्रशास्त्र के अन्य भाग के विरोध में है। जब पवित्रशास्त्र को पवित्रशास्त्र अर्थानुवादित करता है, तो बाइबल के सर्वोच्च अर्थानुवादक, अर्थात् पवित्र आत्मा की सम्प्रभुता को उचित सम्मान दिया जाता है। मनमानी रीति से पवित्रशास्त्र के एक भाग को दूसरे भाग के विरोध में रखना इस सिद्धान्त का उल्लंघन है। पवित्रशास्त्र को न केवल उसके तुरन्त के सन्दर्भ में परन्तु परमेश्वर के वचन के सम्पूर्ण सन्दर्भ में अर्थानुवादित किया जाना चाहिए।

यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि इस प्रकार के आलोचनात्मक विश्लेषण का खण्डन किया जाए जो बाइबल का सापेक्षीकरण (*relativization*) करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि स्रोत आलोचना (*source criticism*) के द्वारा पता लगाए जाने वाले साहित्यिक या मौखिक स्रोतों की उचित खोज को मना किया जा रहा है, परन्तु यह एक रेखा खींचता है कि इस प्रकार के आलोचनात्मक विश्लेषण किस सीमा तक जा सकते हैं। जब स्रोतों की खोज

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

बाइबल को इतिहास से पृथक करती है, बाइबल की शिक्षा को नकारती है, या लेखकत्व के विषय में बाइबल की दावों को नकारती हो, तो वह अपनी उचित सीमाओं से आगे निकल गई है। इसका अर्थ यह नहीं है कि पवित्रशास्त्र की उन पुस्तकों के लेखक का पता लगाने के लिए जिनके लेखक अज्ञात हैं, जैसा कि इब्रानियों की पुस्तक, बाहरी प्रमाणों के उपयोग को मना किया जा रहा है। उन साहित्यिक स्रोतों और परम्पराओं की खोज भी वैध है जिनको किसी अन्तिम सम्पादक द्वारा एक साथ रखा गया जिसका नाम पवित्रशास्त्र में पाया जाता है। परन्तु बाइबल में पुष्टि की गई बातों के विरुद्ध जाना कभी भी वैध नहीं है।

पवित्रशास्त्र के विषय में आत्मा की साक्षी

जबकि पवित्रशास्त्र की प्रकृति, पवित्रशास्त्र का उद्गम, पवित्रशास्त्र का अधिकार, बाइबलीय अधिकार और कलीसियाई अधिकार का सम्बन्ध, ग्रन्थसंग्रह का विस्तार, इत्यादि का अध्ययन महत्वपूर्ण है और पवित्रशास्त्र के अच्छे विद्यार्थी बनने में उपयोगी है। बाइबल के विषय में हमारा ज्ञान अमूर्त बना नहीं रह सकता है। यदि हमारे पास बाइबल के स्वभाव की एक सटीक अवधारणा है, तथा यदि हम ग्रन्थसंग्रह के अधिकार और विषय-क्षेत्र के विषय में अपने विश्वास में शास्त्रसम्मत हैं, परन्तु पवित्रशास्त्र की विषय-वस्तु को अच्छे से नहीं जानते हैं, तो हमें क्या लाभ प्राप्त होगा? पवित्रशास्त्र हमें केवल अमूर्त सिद्धान्त के रूप में नहीं दिया गया है; यह हमारे पास परमेश्वर के ईश्वरीय वचन के रूप में आता है, जिसकी रचना आत्मिक निर्माण, ताड़ना, सुधार और

अधिकार और अर्थानुवाद

शिक्षा के लिए है, जिससे कि हम परमेश्वर के पुरुषों और महिलाओं के रूप में सम्पूर्णता से तत्पर हो सकें।

हमारे समय में संकट केवल इस विषय पर नहीं है कि क्या बाइबल अचूक, त्रुटिहीन या अभिप्रेरित है; संकट तो बाइबल की विषय-वस्तु को लेकर है। हम उन अकादमिक विषयों को—पवित्रशास्त्र का लेखनकाल, संस्कृति, और भाषा—देखने में इतना समय बिताते हैं जिनको हम “प्रोलेगोमेना” (*prolegomena*) या प्रस्तावना कहते हैं कि पास्टर लोग पवित्रशास्त्र की विषय-वस्तु को जाने बिना ही धर्मविद्यालय (*seminary*) से उत्तीर्ण होकर निकल सकते हैं। हमें पवित्रशास्त्र के अधिकार के साथ-साथ उसके सत्य को भी देखना चाहिए।

अपने विषय-वस्तु में बाइबल सत्य है। इसलिए, यह केवल इसलिए प्रासंगिक नहीं है क्योंकि यह आधिकारिक है परन्तु क्योंकि यह हमें उन बातों में निर्देश देती है जिन्हें हमें परमेश्वर के विषय में और अपने विषय में जाननी चाहिए। बाइबल इस अर्थ में सत्य है कि यह भरोसेमन्द है, यह विश्वसनीय है, हम उस पर निर्भर हो सकते हैं; उसमें कोई धोखा, कोई छल, कोई विकृति नहीं है। यह वास्तविकता के विषय में संचार करती है।

हम इस सत्य तक कैसे पहुँच सकते हैं? पवित्र आत्मा के द्वारा। आत्मा द्वारा पवित्रशास्त्र की सत्यता की पुष्टि करने के सम्बन्ध में उभरे सिद्धान्त को, जिसे मुख्यतः जॉन कैल्विन ने विकसित किया, पवित्र आत्मा की भीतरी साक्षी (*the internal testimony of the Holy Spirit*) का सिद्धान्त कहा जाता है। भीतरी साक्षी हमारे भीतर है: पवित्र आत्मा हमारी आत्मा को साक्षी

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

देता है कि यह परमेश्वर का वचन है। पुत्र होने के सम्बन्ध में पवित्रशास्त्र की शिक्षा के आधार पर हम जानते हैं कि पवित्र आत्मा भीतरी रीति से साक्षी देता है। हम कैसे जानते हैं कि हम परमेश्वर के पुत्र हैं? पवित्र आत्मा हमारी आत्मा को साक्षी देता है कि हम परमेश्वर के पुत्र हैं। उसी रीति से पवित्र आत्मा पवित्रशास्त्र के दावों को और उसकी सत्यता की पुष्टि करता है।

मसीहियों का एक पूरा समूह है जो विश्वास करते हैं कि तार्किक सुसंगतता और प्रयोगसिद्ध पुष्टिकरण (*empirical verification*) जैसे संसारी अनुचिन्तन के द्वारा परमेश्वर के वचन की सत्यता को प्रमाणित करने का प्रयास व्यर्थ और यहाँ तक अभक्तिपूर्ण भी है, क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि यह पवित्रशास्त्र को पुष्टिकरण के मानवीय मापदण्ड के अधीन करता है और तर्कबुद्धि और विज्ञान के अधिकार को परमेश्वर के अधिकार से ऊँचा उठाता है। कुछ लोगों ने तर्क दिया है कि बाइबल स्वयं को प्रमाणित करती है (*self-authenticating*) या स्वयं की पुष्टि करती है (*self-attesting*)। निश्चय ही बाइबल स्वयं की सत्यता की पुष्टि करती है, अर्थात् बाइबल यह दावा करती है कि वह परमेश्वर का वचन है। कैल्विन ने पवित्र आत्मा की भीतरी साक्षी को एक प्रगतिशील रीति से समझाया। उसने उन बातों के देखने के द्वारा आरम्भ किया जिन्हें उन्होंने पवित्रशास्त्र के इन्डिशिया (*indicia*) कहा; अर्थात् पवित्रशास्त्र में प्रकट वे वस्तुनिष्ठ प्रमाण कि यह परमेश्वर का वचन है। इन्डिशिया प्रमाण के वस्तुनिष्ठ—न कि व्यक्तिनिष्ठ—परीक्षण योग्य (*testable*), विश्लेष्य (*analyzable*), झुठलाने योग्य (*falsifiable*), या सत्यसाधनीय (*verifiable*) आयामों से सम्बन्धित है: अर्थात् वस्तुनिष्ठ

अधिकार और अर्थानुवाद

प्रमाण। कौन सी बातें संकेत करती हैं कि बाइबल परमेश्वर का वचन है? कैल्विन ने परमेश्वर का वचन होने के लिए बाइबल के दावों के प्रमाण गिाने वाले दो लम्बे अध्याय लिखे, और उसने इस बात को पहचाना कि बाइबल को अपने दावे के साथ सुसंगत होने के लिए उसे आन्तरिक रीति से सुसंगत होना चाहिए और उसमें कोई विरोधाभास नहीं होने चाहिए। कैल्विन ने वस्तुनिष्ठ प्रमाण के आधार पर यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि बाइबल परमेश्वर का वचन है।

परन्तु प्रमाण होने और मान लेने में भिन्नता है। कैल्विन ने कहा कि बाइबल के दावा को प्रमाणित करने के लिए और लोगों को नैतिक सदोषता (*culpability*) की अवस्था में लाने के लिए पर्याप्त प्रमाण है; अर्थात् इस बात को प्रमाणित करने के लिए कि बाइबल परमेश्वर का वचन है प्रमाण पर्याप्त रीति से स्पष्ट है कि इसके अधीन होने या न होने का निर्णय एक नैतिक विषय है। परन्तु मनुष्य इसके विरुद्ध इतना पक्षपातयुक्त है कि अपने कठोर हृदय में वह उस प्रमाण को मानने का प्रतिरोध करेगा।

यही कारण है कि हमें पवित्र आत्मा की आवश्यकता है। पवित्र आत्मा की भीतरी साक्षी के लिए कैल्विन का इस विषय को उठाने में मुख्य लक्ष्य पवित्रशास्त्र के लिए वस्तुनिष्ठ प्रमाण बनाना नहीं, वरन् विश्वासी के जीवन में पवित्र आत्मा के कार्य की ओर ध्यान आकर्षित करना था, क्योंकि कैल्विन ने कहा कि आत्मा का कार्य, “आपके सिर में नहीं परन्तु आपके हृदय में होता है जिससे कि आप इन्डिशिया को मान लें।” इसका क्या अर्थ है? इसका सरल अर्थ है उपस्थित वस्तुनिष्ठ प्रमाण को स्वीकार कर लेना, उसके सामने झुक

क्या मैं बाइबल पर भरोसा कर सकता हूँ?

जाना और उसके अधीन हो जाना। ऐसा नहीं है कि पवित्र आत्मा आपके कान में कोई ऐसा रहस्यमय तर्क फुसफुसाएगा जो शेष लोगों को नहीं दिया जाता है। वह हमारे हृदय में बाइबल की विश्वसनीयता की सत्यता की पुष्टि करता है जो कि हमारे लिए पवित्रशास्त्र के भीतरी और बाहरी चिह्नों में प्रदर्शित है।

यह बात सत्य है कि बहुत समय के लिए पवित्र आत्मा के कार्य के महत्व को कलीसिया में कम आँका गया है, और इससे हमारी हानि हुई है। परन्तु जहाँ पवित्र आत्मा को महत्व दिया जाता है इस बात का खतरा है कि आत्मा को वचन से अलग किया जाता है। क्या परमेश्वर का आत्मा हमारी अगुवाई करता है? अवश्य ही, वह करता है। बाइबल के अनुसार उसकी प्राथमिक अगुवाई है लोगों को पवित्रता, पवित्रीकरण और आज्ञाकारिता में ले जाना। इस बात के लिए वस्तुनिष्ठ प्रमाण है कि पवित्र आत्मा ने इस पुस्तक को दिया है। पवित्र आत्मा वचन की पुष्टि करता है, और वचन आत्मा की पुष्टि करता है।

क्या आपके पास पवित्रशास्त्र के विषय में सन्देह हैं? सन्देहों का समाधान करने के लिए सबसे उत्तम तरीका है बाइबल को पढ़ना। जितना अधिक मैं पवित्रशास्त्र का अध्ययन करता हूँ उतना ही अधिक मैं आश्चर्यजनक अन्तर्दृष्टि और गहरे विश्लेषण द्वारा अचम्भित होता हूँ। मेरे व्यक्तिगत शैक्षणिक पृष्ठभूमि में, मैं मुख्य रीति से दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में प्रशिक्षित हुआ और उसके बाद दार्शनिक ईश्वरविज्ञान में; शिक्षा के उस क्षेत्र के लिए प्रशिक्षण में विवेचनात्मक विश्लेषण (*critical analysis*) पर बहुत ध्यान दिया जाता था। पर मैं स्वीकर करना चाहता हूँ कि जब मैं पवित्रशास्त्र को पढ़ता हूँ, मैं देखता हूँ कि

अधिकार और अर्थानुवाद

पवित्रशास्त्र मेरा विश्लेषण करता है। जब मैं पवित्रशास्त्र पढ़ता हूँ तो मेरा मस्तिष्क अभी भी कार्य कर रहा होता है, और ऐसी बात नहीं है कि मैं उच्चतर आलोचना (*higher criticism*) के सिद्धान्तों से अपरिचित हूँ। वास्तव में, व्यक्तिगत रीति से मेरे लिए पवित्रशास्त्र की सत्यता की अधिक पुष्टि करने वाली बात यह है कि मैंने उच्चतर आलोचना के अतिवादी (*radical*) रूपों का सामना किया। जितना अधिक मैं पवित्रशास्त्र की समस्याओं का अध्ययन करता हूँ, उतनी ही अधिक मैं बाइबल की विचित्र, सूक्ष्म, जटिल समरूपता से अचम्भित होता हूँ। परमेश्वर के वचन की विचित्र समनुरूपता वह तर्क है जो वस्तुनिष्ठ रीति से मुझे सबसे अधिक पवित्रशास्त्र के पक्ष में प्रभावित करती है।

लेखक के विषय में

डॉ. आर.सी. स्मोल लिग्निएर मिनिस्ट्रीज़ के संस्थापक, सेंट एंड्रयूज़ चैपल, सैनफोर्ड, फ्लोरिडा के संस्थापक पास्टर, और रिफॉर्मेशन बाइबल कॉलेज के प्रथम अध्यक्ष, और टेबलटॉक पत्रिका के कार्यकारी सम्पादक थे। उनका रेडियो कार्यक्रम *रिन्यूइंग योर माइंड* अभी भी संसार भर के सैकड़ों रेडियो स्टेशनों पर प्रतिदिन प्रसारित किया जाता है और ऑनलाइन भी सुना जा सकता है। वे एक सौ से अधिक पुस्तकों के लेखक थे, जिनमें *द होलीनेस ऑफ गॉड*, *चोज़ेन बाय गॉड* और *सभी हैं ईश्वरविज्ञानी* सम्मिलित हैं। उन्हें संसार भर में पवित्रशास्त्र की अचूकता की सुस्पष्ट रक्षा तथा परमेश्वर के लोगों के लिए उसके वचन पर दृढ़ विश्वास के साथ खड़े होने की आवश्यकता के लिए पहचाना गया था।



लिग्निएर लाइब्रेरी

लिग्निएर मिनिस्ट्रीज़ एक अन्तरराष्ट्रीय मसीही शिष्यता संस्था है जिसको डॉ आर.सी. स्मोल ने 1971 में संस्थापित किया था जिससे कि जितने अधिक लोगों तक सम्भव हो सके उन तक परमेश्वर की पवित्रता को उसकी पूर्णता में उद्घोषित करें, शिक्षा दें और रक्षा करें। लिग्निएर लाइब्रेरी की मोहर सम्पूर्ण विश्व तथा कई भाषाओं में विश्वसनीयता का चिह्न बन गयी है।

महान आदेश द्वारा प्रेरित होकर, लिग्निएर, शिष्यता के संसाधन को छपे हुए तथा डिजिटल माध्यम से बाँटता है। विश्वसनीय पुस्तक, लेख और वीडियो शिक्षा श्रृंखला चालीस से अधिक भाषाओं में अनुवादित या रिकॉर्ड किए जा रहे हैं। हमारी अभिलाषा है यीशु ख्रीष्ट की कलीसिया का समर्थन करें मसीहियों की यह जानने में सहायता करने के द्वारा कि वे क्या विश्वास करते हैं, वे क्यों विश्वास करते हैं, उन्हें उसके अनुसार कैसे जीना चाहिए, और उसे कैसे बाँटना चाहिए।

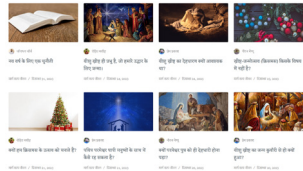


मार्ग सत्य जीवन

ऑडियो-वीडियो: भारत में कलीसिया की उन्नति के लिए हिन्दी में प्रचार एवं लेखों की ऑडियो-वीडियो रिकॉर्डिंग उपलब्ध हैं। इसका उद्देश्य है कि विश्वासी तथा कलीसियाएँ सुसमाचार एवं वचन की समझ में बढ़ें और विश्वास में परिपक्व हो सकें। आप इन्हें यूट्यूब [youtube.com/@MargSatyaJeevan](https://www.youtube.com/@MargSatyaJeevan) पर देख व सुन सकते हैं।



बाइबलीय लेख: margsatyajeevan.com/articles/ पर हिन्दी में खरी शिक्षा पर आधारित लेख उपलब्ध हैं। ये लेख वचन की मुख्य शिक्षाओं को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करते हैं जिससे कि एक नया विश्वासी भी खरी शिक्षा के ज्ञान में वृद्धि करे और पवित्रता का जीवन जिए।



बाइबलीय पुस्तकें: हिन्दी में विश्वासयोग्य बाइबलीय पुस्तकों का अभाव होने के कारण, आपके लिए वचन पर आधारित पुस्तकों को उपलब्ध कराया गया है। आप margsatyajeevan.com/books/ पर कुछ योगदान देने के द्वारा पुस्तकों को प्राप्त कर सकते हैं। हमारी आशा है कि इनके द्वारा आप परमेश्वर के गुणों को देखेंगे, कलीसिया के महत्व को समझेंगे और खीष्ट की समानता में बढ़ेंगे।



अधिक जानकारी के लिए:

फोन नम्बर: 9696110134
<https://margsatyajeevan.com>
ई-मेल: enquirymsj@gmail.com

यूट्यूब: [Marg Satya Jeevan](https://www.youtube.com/@MargSatyaJeevan)
ईस्टाग्राम: [margsatyajeevan](https://www.instagram.com/margsatyajeevan)
facebook.com/margsatyajeevann



सत्य वचन सेमिनरी

पास्टरीय सेवकाई के लिए प्रशिक्षण

वर्तमान समय में वचन पर आधारित कलीसियाओं की बड़ी आवश्यकता है, और कलीसियाएँ वचन पर आधारित तब होंगी जब उनके अगुवे बाइबल के अनुसार योग्य तथा उपयुक्त रीति से प्रशिक्षित होंगे। सत्य वचन सेमिनरी इस उद्देश्य के लिए अस्तित्व में है कि पुरुषों को बाइबल के ज्ञान में, स्थानीय कलीसिया की समझ में, व्यावहारिक सेवा के अनुभव में, और ख्रीष्टीय चरित्र में बढ़ाने के द्वारा कलीसियाओं की सहायता करे। यह तीन वर्षीय, आवासीय कार्यक्रम है जिसमें एम.डिव (M.Div) स्तर की पढ़ाई होती है।

सेमिनरी की कुछ विशेषताएँ:

- स्थानीय कलीसिया द्वारा संचालन
- कलीसिया के पास्टर्स द्वारा निर्देशन
- स्थानीय भाषाओं में सेवा का प्रोत्साहन
- योग्यता-प्राप्त प्रोफेसरों द्वारा शिक्षण
- व्यावहारिक सेवकाई करने के अवसर
- सम्मेलनों/प्रशिक्षणों में जाने के अवसर
- ईश्वरविज्ञानीय पुस्तकालय की उपलब्धता

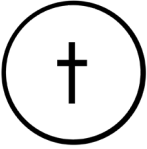
- विधिवत् ईश्वरविज्ञान
- बाइबलीय ईश्वरविज्ञान
- व्याख्याशास्त्र एवं उपदेश कला
- नए नियम में पुराने नियम का उपयोग
- विभिन्न बाइबलीय पुस्तकों का अर्थनिरूपण
- कलीसियाई इतिहास
- बाइबलीय परामर्श
- आपत्तिखण्डनशास्त्र
- अन्य धर्मों का अध्ययन
- बाइबलीय मूल भाषाओं (यूनानी एवं इब्रानी) का अध्ययन

पाठ्यक्रम के कुछ विषय:

- पुराने नियम का सर्वेक्षण
- नए नियम का सर्वेक्षण

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें +91 9450810781

आवेदन प्रपत्र भरने के लिए www.svsem.org वेबसाइट पर जाएँ।



सत्य वचन चर्च

पास्टरीय प्रशिक्षुता (इन्टर्नशिप)

परमेश्वर के वचन के अनुरूप पास्टरों की तैयारी के लिए, बाइबल के अध्ययन के साथ-साथ, व्यावहारिक सेवकाई में अनुभव तथा अनुभवी पास्टरों द्वारा शिष्योन्नति की आवश्यकता होती है। भावी पास्टरों में निवेश करने हेतु सत्य वचन चर्च का पास्टरीय प्रशिक्षुता कार्यक्रम पुरुषों को अवसर प्रदान करता है कि वे सत्य वचन चर्च के अगुवों की देख-रेख में स्वयं को सेवकाई के लिए तैयार कर सकते हैं। प्रशिक्षु सत्य वचन चर्च के सदस्य बनते हैं, कलीसिया के अगुवों के साथ समय व्यतीत करते हैं, पुस्तकों को पढ़ते हैं, और विभिन्न प्रशिक्षणों में भाग लेते हैं।

प्रशिक्षुता की विशेषताएँ:

- वचन के ज्ञान में बढ़ना।
- पास्टरीय सेवा को निकटता से देखना।
- कलीसिया के जीवन में सम्मिलित होना।
- स्थानीय कलीसिया के महत्व को समझना।
- कलीसियाई सेवकाई के सौभाग्यों तथा चुनौतियों को निकटता से देखना।
- व्यावहारिक सेवकाई के अवसर।
- सेवकाई में पासबानों द्वारा निर्देशन।
- उत्साहवर्धक एवं सुधारात्मक टिप्पणियाँ प्राप्त करना।
- सम्मेलनों में भाग लेने के अवसर।
- भविष्य की सेवा से सम्बन्धित सम्मति प्राप्त करना।
- सम्भवतः कलीसिया द्वारा पुष्टि प्राप्त करके सेवकाई के लिए भेजा जाना।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें

+91 86043 09392



आवासीय शिष्यता-कार्यक्रम

आवासीय शिष्यता- कार्यक्रम सत्य वचन चर्च की एक सेवा है जिसके द्वारा भविष्य में कलीसिया के स्वास्थ्य के लिए वर्तमान में जवान भाइयों में निवेश किया जाता है। इसका उद्देश्य है कि जवान भाई 3-4 वर्षों के लिए चर्च के साथ रहकर अपनी पढ़ाई के साथ-साथ वचन के ज्ञान और परिपक्वता में बढ़ें।



कौन भाग ले सकता है? यह कार्यक्रम जवान ख्रीष्टीय पुरुषों के लिए है जो बारहवीं की पढ़ाई कर चुके हैं, स्नातक की पढ़ाई करना चाहते हैं, तथा जिनका परिवार और कलीसिया उनके इस कार्यक्रम में भाग लेने के समर्थन में हैं।

लक्ष्य: आशा है कि इस कार्यक्रम के द्वारा भाई:

- i. परमेश्वर के वचन के ज्ञान और ख्रीष्टीय परिपक्वता में बढ़ेंगे।
- ii. ख्रीष्टीय अगुवाई तथा कलीसियाई सेवकाई के लिए उत्साहित होंगे।
- iii. अपनी स्नातक की पढ़ाई पूरी करेंगे।
- iv. व्यावहारिक प्रतिभाओं तथा योग्यताओं में बढ़ेंगे। (अंग्रेजी बोलना, कम्प्यूटर चलाना, गाड़ी चलाना)
- v. व्यक्तित्व विकास तथा बौद्धिक विकास में उन्नति करेंगे।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें

+91 8604309392/ +91 9696110134

क्या परमेश्वर ने वास्तव में बात की?

बाइबल क्या है? क्या हम सच में इस पर भरोसा कर सकते हैं? बहुत लोग सोचते हैं कि बाइबल त्रुटियों और विरोधाभास से परिपूर्ण है। कुछ सोचते हैं कि यह उन लोगों के जीवन और विश्वास के विषय में थोड़ा रुचिकर दृष्टिकोण प्रदान करती है।

इस पुस्तिका में, डॉ. आर.सी. स्मोल प्रकट करते हैं कि ये सामान्य मान्यताएँ त्रुटिपूर्ण हैं। बाइबल परमेश्वर का वचन है, और इसलिए यह भरोसेमन्द, आधिकारिक, और त्रुटिहीन है। इसकी बातों में जीवन-परिवर्तनकारी महत्व है और किसी के द्वारा भी इसकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। हम सर्वदा उन बातों पर भरोसा कर सकते हैं जो परमेश्वर स्वयं के विषय में अपने वचन में कहता है।

डॉ. आर.सी. स्मोल द्वारा लिखी गई यह अति महत्वपूर्ण प्रश्न पुस्तिका श्रृंखला, मसीहियों और विचारशील जिज्ञासुओं द्वारा प्रायः पूछे जाने वाले महत्वपूर्ण प्रश्नों के लिए संक्षिप्त उत्तर प्रस्तुत करती है।

डॉ. आर.सी. स्मोल लिग्निएर मिनिस्ट्रीज़ के संस्थापक थे, सेंट एंड्रयूज़ चैपल, सैनफोर्ड फ्लोरिडा के संस्थापक पास्टर, और रिफॉर्मेशन बाइबल कॉलेज के प्रथम अध्यक्ष थे। वे सौ से अधिक पुस्तकों के लेखक थे, जिनमें *द होलीनेस ऑफ गॉड* भी सम्मिलित है।



लिग्निएर
लाइब्रेरी



ISBN: 9788198639912



9788198639912